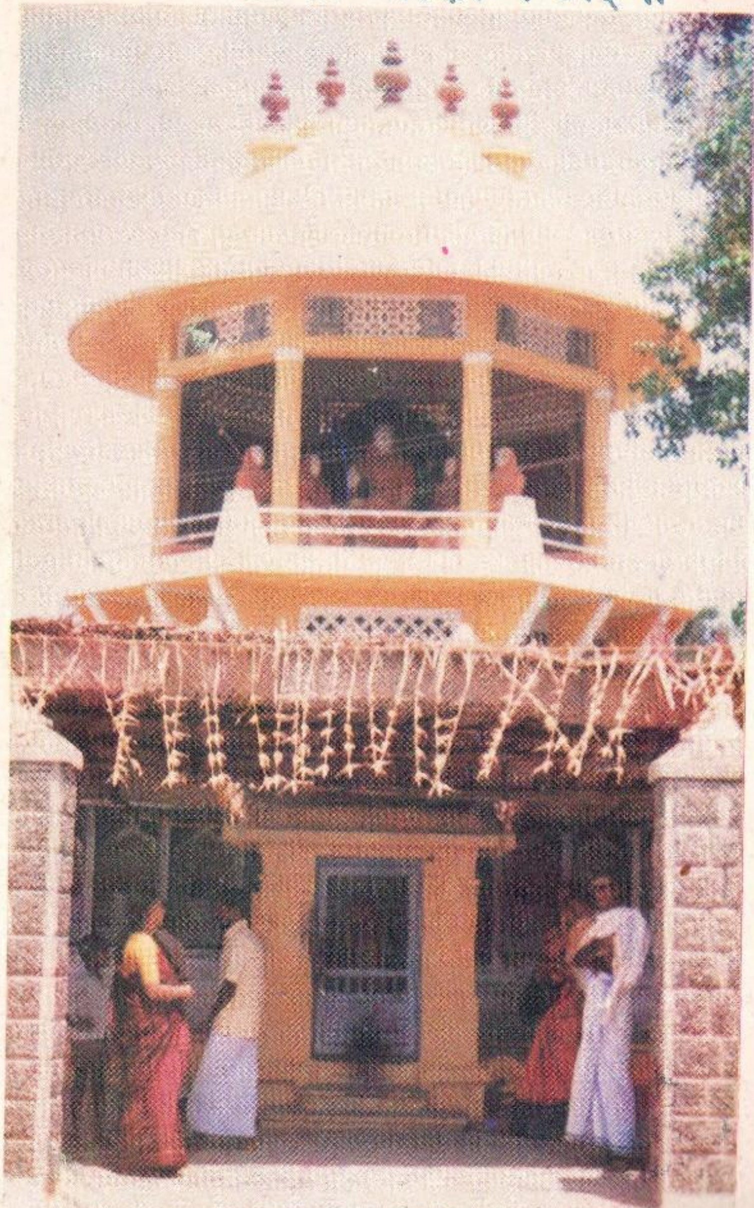
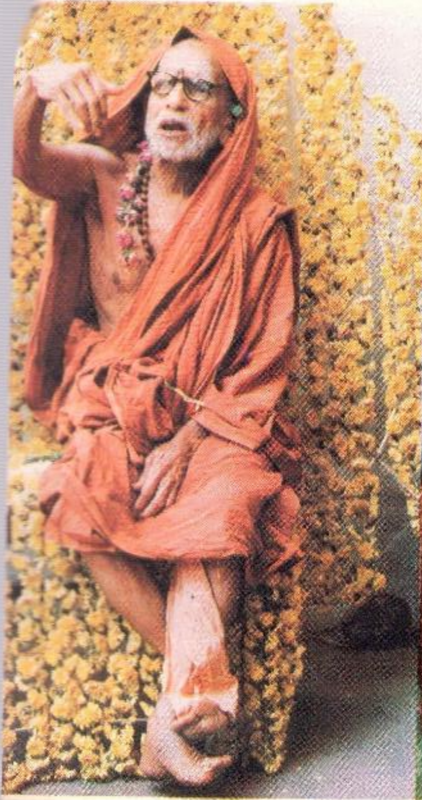
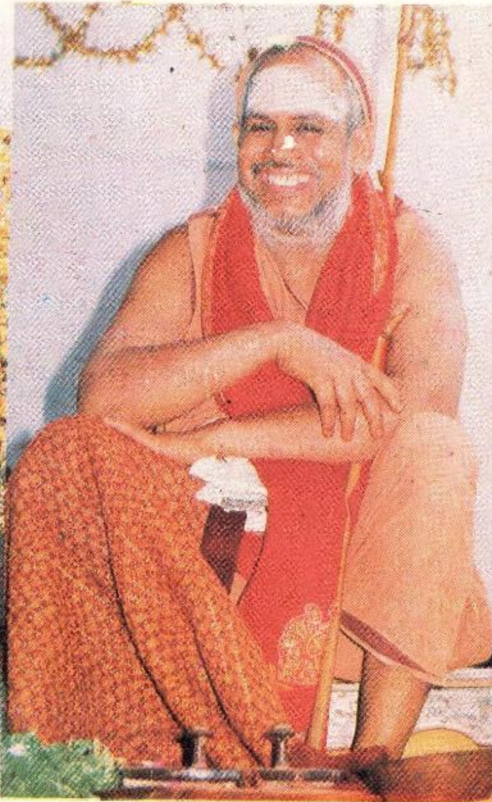
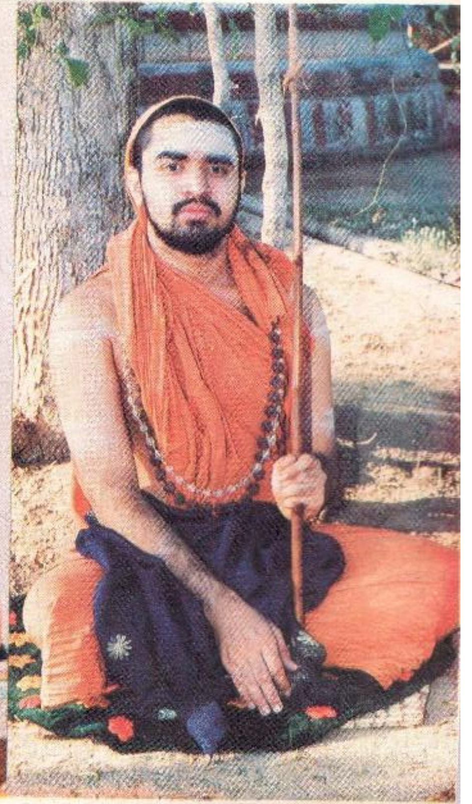
॥ श्रीरामेश्वर श्रीशङ्कर मण्डपम् ॥



श्रीकामकोटि त्रिवेणि

श्रीकामाक्ष्यै नमः
श्रीचन्द्रमौलीश्वराय नमः

श्रीरामेश्वर - क्षेत्र

का

श्रीशङ्कर - मण्डप

[श्री आदिशङ्कर मण्डप के विमान के चारों ओर के शिलालेकों, मण्डप के सामने के द्वादश लिङ्गों तथा सरस्वती-स्थान के चारों ओर के नारीरत्नों के आलेख्यों का संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक में दिये गये हैं ।]



हिन्दी - रूपान्तर - कार

शिरोमणि. शिवसुब्रह्मण्यम, एम. ए.,
हिन्दी - प्राध्यापक, पच्चयप्पासकालेज, कांचीपुरम ॥

प्रकाशक :

श्री कांचीकामकोटिपीठाधिपति श्रीशंकराचार्य मठ,
अग्नितीर्थम्, रामेश्वरम् (दक्षिण भारत) ॥

1991

Rs. 7/-



Printed at:
Rajan & Co., Printers,
No. 1, Goomes Street,
Madras-600 001.

ॐ

॥ श्रीकामाक्ष्यै नमः ॥

॥ श्रीचन्द्रमौलीश्वराय नमः ॥

श्रीरामेश्वर-क्षेत्र का श्रीशङ्करमण्डप

सकलविघ्ननिवर्तकशङ्कर-
प्रियसुत! प्रणतार्तिहर प्रभो।
मम हृदम्बुज-मध्य-लसन्मणी-
रचितमण्डपवासरतो भव॥

दूरीकृतसीताऽऽर्तिः
प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः।
दारितदशमुखकीर्तिः
पुरतो मम भातु हनूमतो मूर्तिः॥

"अलुन्दोरुम् अणैक्कुम् अन्नै,
अरिविलादु ओडि ओडि
विळुन्दोरुम् एडुक्कुम् अप्पन्,
विळैयाडुम्बोतु तोळन्,

तोळुन्दोरुम् काक्कुम् दैवम्,
शोन्दमाय् एडुप्पोर्क्केल्लाम्
कुळन्दै—इप्पडि उलावुम्
गुरुनादन् वाळि वाळि ॥"

[तमिळ भाषा के इस पद्य का भाव :—

"रोते हैं तो माँ बन कर
तू हमें गले लगाता है,
ज्ञानविहीन हो लड़खड़ाते गिरते
हैं तो पिता बन उद्धार करता है,

खेलते हैं तो मित्र बन तू
साथ खेलता-फिरता है,
अस्तुति करते हैं तो देवता बन तू
हमारी रक्षा करता है,

ममता व आत्मीयता बरतने पर तू
नन्हा बच्चा बन जाता है,
यों भिन्न-भिन्न रूपों में तू
बीच हमारे सदा विचरता है,

गुरुनाथ! तेरी जय हो! तेरी जय हो!!!॥

हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक के सभी आस्तिक महाशय प्राय: अपने जीवन में कम से कम एक बार तो अवश्य श्रीरामेश्वर की यात्रा, वहाँ के देवताओं के दर्शन और पुण्यतीर्थों का स्नान करके आत्मलाभ प्राप्त करते हैं। भारत के चार आम्नाय क्षेत्रों में श्रीरामेश्वर की गणना भी की गयी है। श्री आदिशंकर महाराज के गाये हुए बारह ज्योतिर्लिङ्ग क्षेत्रों में से श्रीरामनाथलिङ्ग का क्षेत्र यही रामेश्वर है, जो भारत के दक्षिणी छोर में बसा हुआ है। भारत के चार धामों में यह भी एक माना जाता है। इस क्षेत्र के अग्नितीर्थ के किनारे पर श्री आदिशङ्करमूर्ति के मण्डप-विमान का अभी हाल में [सन् १९६३ की शङ्कर जयन्ती के अवसर पर] निर्माण कराया गया है। लगभग पचास फुट की ऊंचाई पर अपने चारों शिष्यों समेत श्री आचार्य-मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी है। यह मण्डप-विमान पूरा पूरा संगमरमर का बनवाया हुआ है। श्री आचार्यजी का पीठ लगभग पच्चीस फुट की ऊंचाई पर विराजमान है।

इस विमान के पूर्व भाग में श्री आँजनेयजी [बजरंगबलीजी] का भी मंदिर है जिसके दोनों ओर द्वादश महालिङ्गों के स्थान छोटे परिमाण में बनवाये गये हैं। वे द्वादश महालिङ्गों के नाम यों हैं; हिमाचल के श्री केदारेश्वर, सौराष्ट्र के श्री सोमनाथ, उज्जैन के

श्री महाकालेश्वर, वाराणसी के श्रीविश्वनाथजी, परली के श्री वैद्यनाथ जी, डाकिनी के श्री भीमेश्वरजी, औण्ड के श्री नागेशजी, नर्मदा के श्री ओङ्कारेश्वर, एल्लोरा के श्री घुसृणेश, गौतमीतट के श्री त्र्यम्बकेश्वर, श्रीशैल के श्री मल्लिकार्जुन और श्री रामेश्वर के श्री रामनाथ हैं। इन सब की स्तुति स्वयं श्री आदिशंकर भगवत्पादजी नें की है। ध्यान देनें की बात यह है कि उक्त मण्डप के बारहों स्थानों की बनावट उपर्युक्त प्रदेशों के प्रतिष्ठित महालिङ्गों के स्थानों के विमानशिल्प के अनसार छोटे छोटे विमानचित्रों के साथ ही करवायी गयी है।

श्री आदिशंकरजी के विमान के चारों ओर निम्न-प्रकार महर्षियों, रार्जषियों और सन्तों के आलेख्यों की खुदाई भी बनायी गयी है। वे क्रमशः यों हैं :—

(१) नारद-ध्रुव, (२) प्रह्लाद-असुरबालक, (३) सप्तर्षि-वाल्मीकि, (४) रैंग्व-जानश्रुति, (५) भीष्म-युधिष्ठिर, (६) धर्मव्याध-कौशिकब्रह्मचारी, (७) याज्ञवल्क्य-जनक, (८) यम-नचिकेता, (९) नारद-सनत्कुमार, (१०) सनत्सुजात-धृतराष्ट्र, (११) सूत-शौनकादि, (१२) वाल्मीकि-कुशलव, (१३) जडभरत-रहूगण, (१४) जयदेव-पद्मावती, (१५) विद्यारण्य-बुक्कभूपाल, (१६) रैदास-मीराबाई, (१७) रामानन्द-कबीरदास, (१८) शशिवर्ण-नन्दिपारायण, (१९)

अप्पय्यदीक्षित-नीलकंठदीक्षित, (२०) बोधेन्द्र श्रीधर वेङ्कटेश, (२१) भद्राचल-रामदास, (२२) वाचस्पतिमिश्र-भामति, (२६) एकनाथ-जनार्दन, (२४) शिवाजी-समर्थ रामदास, (२५) सदाशिवब्रह्मेन्द्र-पुदुक्कोट्टै राजा, (२६) गोस्वामी तुलसीदास, (२७) कृष्णचैतन्यमहाप्रभु, (२८) मधुसूदन सरस्वती-बल भद्र, (२५) त्यागय्या और, (३०) पट्टिनत्तार-भद्रगिरियार।

उक्त विमान के पींछे एक पुस्तकालय भी खोला गया है और श्री सरस्वतीजी की सफेद संगमरमर की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी की गयी है। श्री सरस्वतीस्थान के चारों और निम्नप्रकार नारीरत्नों के आलेख्यों की खुदायी भी बनायी गयी है। वे यों हैं :—

(१) श्री गणेशजी की सूंड पर औवैयार (२) वळ्ळुवर की वासुकि (३) कण्णकि (४) अरुन्धती (५) अनुसूया (६) लोपामुद्रा-कावेरी (७) मन्दोदरी (८) सीता (९) शबरी (१०) चन्द्रमती [शैव्या] (११) दमयन्ती (१२) गांधारी (१३) पतिव्रता नारी (१४) नलायिनी (१५) सावित्री (१६) सुकन्या (१७) सुदक्षिणा (१८) रुक्मिणी (१९) आदिशंकर जी की माता आर्याम्बाल (२०) कनकधारा और (२१) सरसवाणी।

पुस्तकालय के प्रवेशद्वार के पास ही अष्टकोणरूप में विमान सहित श्री गणेशमन्दिर का निर्माण कराने तथा उसकी बाहरी दीवारों पर ध्यानश्लोक के अनुसार सोलह गणेशमूर्तियों की खुदाई कराने का भी प्रबंध किया गया है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, इस श्रीशंकर-मण्डप के प्रतिष्ठित शिल्पों और खुदाइयों के बारे में विवरणात्मक परिचय लिखने का आदेश मुझे मिला था। उसी का पालन करने के उद्देश्य से यह पुस्तिका लिखी गयी है। आस्तिक पाठकों से प्रार्थना है कि इसमें कहीं त्रुटियां हो गयी हों तो क्षमा करने की कृपा करें।

I श्री आञ्जनेयजी [महावीरजी]

उक्त मण्डप में प्रवेश करते ही वहां के प्रतिष्ठापित श्री आञ्जनेयजी के दर्शन करते हैं। मूर्ति का दायाँ हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ है। परंपरा की कथा यह है कि सामने के समुद्र को इस मुद्रा के द्वारा वे आदेश देते हैं कि तुम वहीं स्थिर रहो और आगे बढ़ कर यहाँ के निवासियों को कष्ट न पहुचाओ। ऊर्ध्व हस्त की मुद्रा इसी बात को बताती है।

II. द्वादश महालिङ्गों का विवरण

भारत के द्वादश महालिङ्गों तथा उनके स्थानों के बारे में निम्नलिखित श्लोक खूब प्रसिद्ध हैं :—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरे ॥

परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुमध्ये तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥

वाराणस्यां तु विश्वेशम् त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं शिवालये ॥

अब इन सब का सक्षेप में विवरण नीचे दिया जाता है।

1. श्रीरामनाथजी

तमिलनाडु के ज्योतिर्लिङ्ग श्री रामनाथ जी हैं। ये रामेश्वरक्षेत्र में विराजमान हैं। भारत के दक्षिणी छोर में बसा हुआ रामेश्वर एक छोटा-सा टापू है। देश भर के आस्तिक लोग अपने जीवन काल में कम से कम एक बार तो अवश्य इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं। पौष तथा आषाढ की अमावास्या के दिन—साल भर में ये दो दिन—इस की यात्रा के लिए अपना विशेष महत्व रखते

हैं, यद्यपि रामेश्वर के तीर्थों में सभी दिन स्नान कर सकते हैं। "सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्या व्यपोहति" अर्थात् यहाँ के सेतुबन्ध के दर्शनमात्र करने से ब्रह्महत्यादि महापातक भी नाश हो जाते हैं। गंगानदी की यात्रा करनेवाले लोग यहाँ की मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं और तीर्थराज में उसे डाल आते हैं। प्रयागराज का तीर्थस्नान समाप्त करके वहाँ से गंगाजल लाते और उसे श्रीरामनाथलिङ्गजी को चढ़ाते हैं। तमिल भाषा के शैव संतों [जो नायन्मार कहलाते हैं] के द्वारा इस क्षेत्र की स्तुति की गयी है। यहाँ कई प्रकार के तीर्थ भी हैं जिनमें से तीन बड़े मुख्य माने जाते हैं। अग्नितीर्थ समुद्र की ही एक घाट है। रामनाथजी के मंदिर का एक कुआँ कोटितीर्थ कहलाता है। लक्ष्मणतीर्थ एक तालाब है। रामेश्वर स्टेशन तक हम रेलगाड़ी द्वारा पहुँच सकते हैं।

यहाँ के समुद्र के अग्नितीर्थ के किनारे पर श्री जगद्गुरु कांची कामकोटिपीठाधिपति वर्तमान श्री शंकराचार्यजी महाराज ने श्री आदिशंकरमण्डप का निर्माण अभी हाल में करवाया है जिसका पूरा विवरण इस छोटी पुस्तक में दिया गया है। रामेश्वर के दक्षिण में अठारह मील की दूरी पर "धनुष्कोटि" का तीर्थ भी है। यहां भी रेलगाड़ी के द्वारा पहुँच सकते हैं।

2. श्री मल्लिकार्जुन

श्री शैलक्षेत्र की श्री मल्लिकार्जुनमूर्ति की गणना भी द्वादश लिङ्गों में की गयी है। यहाँ का स्थलवृक्ष अर्जुन [काहू] है। तिरुनेल्वेलि जिले के 'तिरुप्पुडैमरुदूर' तथा तंजौर जिले के तिरुविडैमरुदूर'—इन दोनों क्षेत्रों का स्थल वृक्ष भी यही काहू है। 'तेवारम' [शैवभक्तवाङ्मय या शैववेद] में श्रीशैल का नाम 'तिरुप्परुप्पदम' बताया गया है। तीनों मुख्य नायन्मारों ने [तिरुनावुक्करशर, श्री सुन्दरमूर्ति और तिरुज्ञानसंबन्धर] इस क्षेत्र की स्तुति की है। कहा जाता है कि स्वयं नन्दिकेश्वरजी ही पर्वत का रूप धारण करके यहाँ के ईश्वर का वहन करते हैं। इस क्षेत्र की देवीजी का शुभनाम 'भ्रमराम्बिका' है। श्री आदिशंकराचार्यजी ने इस देवी के संबन्ध में 'भ्रमराम्बाष्टक' की रचना की है।

'श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते' अर्थात् श्रीशैलपर्वत की चोटी मात्र के दर्शन करने पर आवागमन छूट जाता है। बहुशः लिङ्गायत लोग ही इस लिङ्गमूर्ति की उपासना करते हैं। यह क्षेत्र आंध्र देश में है। उत्तर से आनेवाले यात्री लोग हैदराबाद से होकर कर्नूल तक रेलगाड़ी से पहुँच सकते हैं। कर्नूल से आत्माकूर के मार्ग से हो कर श्रीशैल तक का रास्ता बस गाडी से पार करना पड़ता है। डेढ़ सौ मील का पहाड़ी रास्ता अब

सुगम बना दिया गया है। बम्बई की तरफ़ से आनेवाले यात्री लोग गुण्डक्कल-द्रोणाचल से होकर नंदियाल तक रेलगाड़ी से पहुँच सकते हैं। नंदियाल से आत्माकूर और वहाँ से श्रीशैल को बस गाड़ियां चलती हैं। दक्षिण के लोग विजयवाड़ा से होकर नंदियाल तक रेलगाड़ी में जा सकते हैं। अलावा इसके ओंगोल-द्रोणाल-श्रीशैल का मार्ग भी सुविधाजनक है। द्रोणाल से लगभग पैंतीस मील का पहाड़ी रास्ता बड़ा सुगम होता है। नंदियाल से पेद्दचरिवु और वहां से श्रीशैल तक का सत्तर मील का पहाड़ी रास्ता बड़ा दुर्गम है और यह रास्ता आजकल बहुत कम चलता है। हाल ही में श्री जगद्गुरु कांची कामकोटि पीठाधिपति वर्तमान श्रीशंकराचार्य जी की प्रेरणा से श्री शैलक्षेत्र पर श्री आदिशंकराचार्यजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने का प्रबंध भी हो गया है और मन्दिर-मण्डप के निर्माण का कार्य चल रहा है।

3. भीमशङ्करजी

यह ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। भीमशङ्करजी की मूर्ति डाकिनी क्षेत्र में विराजमान है। यह क्षेत्र एक आरण्य के बीच में है। कुम्भकर्ण के पुत्र भीमराक्षस का बध करने से 'भीमेश्वर' नाम पड़ा था। पूना नदी के किनारे के 'मांचर' से होकर पहाड़ के रास्ते से यहाँ

पहुँच सकते हैं। खाण्डेश जाकर भी पहाड़ी रास्ता पकड़ सकते हैं। 'नेराल' के जंकशन से होकर भी जा सकते हैं। अब तो पूना से भीमशंकर तक बस गाडियां चलती हैं। पूना से जुन्हार तथा वहाँ से नब्बे मील जाने पर भीमशंकर क्षेत्र पहुँच सकते हैं।

4. वैद्यनाथजी

ज्योतिर्लिङ्गों में से एक वैद्यनाथ जी भी हैं। इनके सम्बन्ध में दो विभिन्न ऐतिह्य मिलते हैं। शिवपुराण में 'वैद्यनाथं चिता भूमौ' बताया गया है। तदनुसार कुछ लोगों का कहना है कि विहार प्रान्त के गया क्षेत्र के समीप वैद्यनाथ क्षेत्र विद्यमान है। 'परल्यां वैद्यनाथम्' के आधार पर कुछ लोगों का विचार है कि परली की लिंगमूर्ति ही वैद्यनाथजी हैं। 'परलिवैद्यनाथ' स्टेशन पर उतर कर यहाँ पहुँच सकते हैं।

5. नागेशजी

ज्योतिर्लिङ्गों में से एक नागेशजी का क्षेत्र 'औण्ड' पर है। इनका नामान्तर नागनाथजी' भी है। यहाँ की विशेषता यह है कि लिङ्गमूर्ति का गोमुख पूरब की ओर है। इस प्रदेश का नाम दारुकावन भी है। पूर्णा जंकशन से हिंगोल जानेवाली गाड़ी पकड़कर 'चोण्डी' स्टेशन पहुँच सकते हैं। वहाँ से चौदह मील की दूरी पर यह क्षेत्र विद्यमान है।

6. घुसृणेशजी

श्रीघुसृणेशजी की मूर्ति 'विराल' नामक गांव में विराजमान हैं। सेन्ट्रल रेल्वे के औरंगाबाद स्टेशन पर उतर कर यहाँ पहुँच सकते हैं। एल्लोरा की गुफा ओं से एक मील की दूरी पर यह क्षेत्र बसा हुआ है।

7. त्र्यम्बकेशजी

सातवां ज्योतिर्लिङ्ग त्र्यंबकेशजी हैं। ये नासिक के पास गौतमी नदी के तट पर विराजमान हैं। गोदावरी का स्थानीय नाम गौतमी है। सेंट्रल रेल्वे के नासिक रोड़ स्टेशन से बीस मील जाकर यहाँ पहुँच सकते हैं।

8. ओङ्कारेश्वरजी

ओङ्कारेश्वरजी का धाम अमलेश्वर है। इस क्षेत्र का नामान्तर मान्धाता भी है। इसका यह नाम इसलिए हुआ कि इक्ष्वाकुवंश के प्रसिद्ध राजा मांधाता यहीं पर शासन करते थे। यह नर्मदा नदी के किनारे पर है। यहाँ पर नर्मदा नदी प्रणवाकार में बहती है। यहाँ के गणेशजी के पाँच मुख होते हैं। उज्जैन–खण्डवा के रास्ते के 'मोरटक्का' स्टेशन पर उतरकर दस मील जाने पर यहाँ पहुँच सकते हैं।

9. सोमनाथ जी

इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथजी का क्षेत्र सौराष्ट्र [गुजरात] में है। कुछ ही साल हुए, एक करोड़ रुपये के खर्च पर यहाँ के मन्दिर का नवनिर्माण कराया गया है। कहा जाता है कि भगवान् श्रीकृष्ण को यहीं पर शिकारी की तीर लगी थी। मोक्षदायक पुरियों में से एक द्वारका भी है। वहाँ से करीब ढाई सौ मील पर यह क्षेत्र विद्यमान है। मंदिर के आसपास का प्रदेश 'प्रभासपत्तन' कहलाता है। बम्बई से बीरमाल तक नावें भी जाती हैं। हवाई-जहाज से जाने पर 'केषहोड़' में उतरना पड़ता है। अब प्रभासपत्तन का रेल्वे स्टेशन भी बन गया है।

10. महाकालेश्वरजी

उज्जैन की ज्योतिर्लिङ्गमूर्ति का नाम महा-कालेश्वरजी हैं। उज्जैन का प्राचीन नाम अवन्ती है। यहीं पर सुधन्वा नामक राजा राज करते थे। ये पहले जैनधर्मावलम्बी थे। बाद को श्री आदि शंकराचार्यजी से प्रभावित होकर अद्वैतसंप्रदाय के अनुयायी बने थे। सात मुक्तिपुरियों में इसकी भी गणना है। "अयोध्या मथुरा

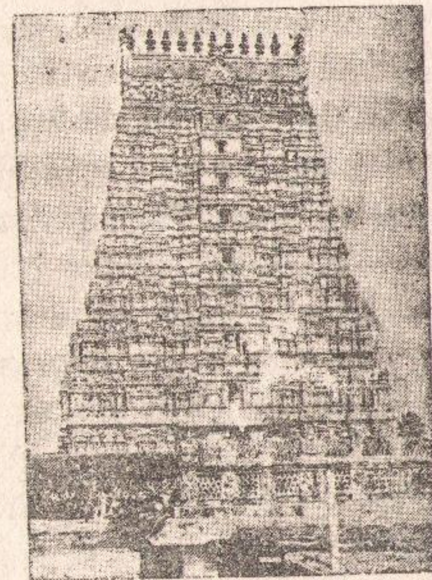
माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मुक्तिदायका:।" प्रसिद्ध विक्रमादित्य का शासन भी यहीं हुआ था। रेलगाड़ी के द्वारा इंदौर-चंद्रावती-उज्जैन पहुँच सकते हैं। चन्द्रावती से पन्द्रह मील की दूरी पर उज्जैन पड़ता है जो एक रेल्वे जंक्शन है। पद्मपुराण का वचन है "मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नुयात्" इस नश्वर लोक में श्रीमहाकालेश्वर के दर्शन किये जायें तो मोक्ष की प्राप्ति होती है।

11. विश्वेशजी

ज्योतिर्लिङ्गमूर्ति विश्वेशजी का क्षेत्र वाराणसी है। अविमुक्त, महाश्मशान, आनन्द वन ये तीनों काशीक्षेत्र के नामान्तर होते हैं। यहाँ गंगा नदी उत्तरवाहिनी होकर बहती है। मुक्तिदायक सात पुरियों में काशी भी एक है। 'काश्यां तु मरणान्मुक्तिः' अर्थात् काशी में मरण होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। 'काशीखण्ड' में इस क्षेत्र की महिमा का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। यह एक सौ अध्यायों का एक बृहत् ग्रंथ है। यहाँ की गंगामाई की कई घाटों में मणिकर्णिका की घाट अपना विशेष महत्व रखती है। काशी में विश्वेश्वर, विशालाक्षी, अन्नपूर्णा, बिन्दुमाधव, ढुंढिविनायक, दण्डपाणि, भैरव आदि देवताओं के दर्शन अवश्य करने के हैं।

12. केदारेश्वरजी

बारहवीं ज्योतिर्लिङ्गमूर्ति श्री केदारेश्वरजी हैं। इनका क्षेत्र हिमाचल का केदारधाम है। दिल्ली-हरिद्वार-ऋषिकेश से होकर रुद्रप्रयाग तक बस गाड़ी से पहुँच सकते हैं। उसके आगे का ४८ मील का रास्ता पैदल पार करके केदार क्षेत्र पहुँचना पड़ता है।



III. महर्षियों, राजर्षियों और संतों के शिलालेख्य

[श्रीशंकर मण्डप की परिक्रमा करने पर निचली श्रेणी में निम्नलिखित शिलालेख्यों के दर्शन कर सकते हैं ।]

1. नारद भगवान् और ध्रुव

स्वायम्भुव मनु के बेटे उत्तानपाद के दो पत्नियां थीं । बड़ी पत्नी सुनीति का बेटा ध्रुव और छोटी पत्नी सुरुचि का बेटा उत्तम था । एक बार राजा उत्तानपाद सुरुचि के बेटे उत्तम को अपनी गोद में लिये खेला रहे थे । यह देखकर ध्रुव को भी पिता की गोद में बैठने की लालसा हुई थी । वह लपक कर दौड़ा तो सुरुचि ने उसे रोक दिया और गर्व से कहा "अगर तुम राजा की गोद में बैठना चाहते हो तो तुम्हें मेरे गर्भ से जन्म लेना चाहिए था ।" यह सुनकर बालक ध्रुव के मन में ग्लानि हुई और वह अपनी माता के पास गया । उसने उससे इस बात की शिकायत की । सारा हाल सुन कर माता विषण्ण हुई और बोली "बेटा, तुम्हारी सौतेली माता का वचन बिल्कुल ठीक है । तुम को वह सौभाग्य नहीं मिल सकता । यह सब हमारे दुर्भाग्य की बात है । हाँ, भगवान के आराधन से तुम को वह स्थान मिल सकता है ।" ध्रुव तुरन्त बोल उठा "माँ, अभी मैं घर से निकल

पड़ता हूँ और भगवान का आराधन कर वह उत्तम स्थान प्राप्त करता हूँ ।" माता की अनुमति और अनुग्रह लेकर वह जंगल में चला गया । बीच रास्ते में भगवान नारदजी



नारद भगवान और बालक ध्रुव

से ध्रुव की भेंट हुई । उन्होंने बालक को समझा बुझा कर वापस भेजना चाहा । लेकिन बालहठ के सामने देवर्षि को भी हार मानना पड़ा । ध्रुवने उनसे प्रार्थना की कि भगवान से भेंट करने का उपाय मुझे बतलाइये । नारदजी ने कहा कि सभी पुरुषार्थ प्राप्त करने का एक मात्र साधन श्रीहरिचरणों की सेवा ही है । उन्होंने बालक को द्वादशाक्षर मंत्र का उपदेश किया तथा ध्यानविधि भी बतलायी । तदनुसार ध्रुवने छे महीने में भगवान का साक्षात्कार किया और उन्नत पद भी प्राप्त किया था ।

प्रस्तुत शिलालेख्य में नारदजी ध्रुव को मंत्रोपदेश दे रहे हैं।

2. प्रह्लाद और असुर-बालक

प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकश्यप का बेटा था। जब वह माता गयाधु के गर्भ में था तब हिरण्यकश्यप तपस्या करने चला गया था। अवसर पाकर देवेन्द्र ने गर्भिणी गयाधु की कैद कर ली। भगवान नारदजी ने इन्द्र को इस नीच कार्य से निवृत्त किया और कहा कि इस के गर्भ में महा-भागवतोत्तम निवास कर रहा है। नारदजी ने



प्रह्लाद तथा असुर-बालक

गयाधु को छुड़ाकर अपने आश्रम में रख लिया और उसे ज्ञानोपदेश किया था। गर्भ का बालक भी ज्ञान की वे बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा था। जन्म होने पर उस

बालक का नाम प्रह्लाद रखा गया और वह परम विष्णु-भक्त हो गया था।

प्रह्लाद की हरि-भक्ति देख कर हिरण्यकश्यप भी सन्नाटे में आ गया। उसने कई प्रकार की नसीहतें दीं, लेकिन उसने एक न मानी। उसका स्वभाव वैसा ही रहा। हिरण्यकश्यप ने उसे आचार्यों और आचार्य-पुत्रों के पास विद्याभ्यास के लिए रख छोड़ा। जब आचार्य लोग बाहर कहीं गये हुए थे तब प्रह्लाद अपने साथी असुर-बालकों को भक्ति का उपदेश देने लग गया था। प्रह्लाद का उपदेश था "हे बालको! लड़कपन की यह अवस्था भगवद्भजन करने के लिए बड़ी उपयुक्त होती है। मनुष्य का यह जन्म पाना दुर्लभ होता है। इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। लेकिन इस नश्वर शरीर के द्वारा हम महान् आत्मलाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हम सब आदिदेव नारायण की उपासना करें।" प्रह्लाद पर हिरण्य कश्यप का क्रोध बढ़ गया। उसे तरह तरह की यातनाएं भी देने लगा। अन्त में श्रीहरि नृसिंह के रूप में प्रगट हुए और हिरण्यकश्यप का वध करके प्रह्लाद पर अनुग्रह किया था। भागवतों में प्रह्लाद का स्थान सर्वप्रथम माना जाता है। प्रस्तुत आलेख्य में असुरबालकों के उपदेशक के रूप में प्रह्लाद का चित्रण किया गया है।

3. सप्तर्षिगण और व्याध-वाल्मीकि

वाल्मीकि एक ब्राह्मण थे। किसी पापविपाक के कारण 'रत्नाकर' नाम के शिकारी बन गये थे। वे जंगल में विचरण करते और राहगीरों को उपद्रव दे रहे थे। उनके पूर्व-पुण्य के फलस्वरूप एक दिन सप्त ऋषि लोग उसी जंगल से होकर निकल रहे थे। रत्नाकर उन्हें तंग करने लगा तो उन्होंने उसके जीवन के बारे में पूछा। रत्नाकर ने कहा कि अपने कुटुम्ब का निर्वाह करने के लिए ही ऐसी लूट-मार का कार्य कर रहा हूँ। ऋषियों ने फिर कहा "तुम अब अपने परिवार के लोगों से पूछ आओ कि क्या वे भी तुम्हारे इन पाप कार्यों का फल ग्रहण करने तैयार हैं।" ऋषियों के वहीं रहने का वचन देने पर रत्नाकर अपने घर गया और घरवालों से वही प्रश्न किया। उन्होंने साफ़ कह दिया कि परिवार का पालन करना तो तुम्हारा कर्तव्य है और तुम्हारे पापों से हमारा कुछ भी संबन्ध नहीं है। बस, रत्नाकर के मन में वैराग्य जागृत हुआ और लौट कर ऋषियों के चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने उसे राम-मंत्र का उपदेश दिया। परन्तु वह उसका ठीक उच्चारण नहीं कर सका। तब ऋषियों ने पास के एक वृक्ष को दिखा कर पूछा कि यह कौन-सा पेड़ है। रत्नाकर ने जवाब दिया "मरा"। तब ऋषियों ने 'मरा' शब्द को ही बार बार तेज़ी से दुहराने की

सलाह दी। रत्नाकर ने वैसा ही किया तो "राममंत्र" का ठीक ठीक उच्चारण हो गया था। तब ऋषियोंने



वाल्मीकि और सप्तऋषिगण

आदेश दिया कि जबतक हम लौट आयँगे तब तक इसी स्थान पर बैठे हुए इसी नाम का जप करते रहो। यों कहकर ऋषिगण चले गये। रत्नाकर भी वहीं बैठा हुआ ध्यान से राम-मंत्र का जप कर रहा था। कुछ दिन बाद उसके चारों ओर लम्बी चौड़ी बांबी ज़मीन से बढ़ आयी और जप करने वाले रत्नाकर को ढंक दिया था। कुछ काल के बाद सातों ऋषिगण फिर उसी मार्ग से निकल पड़े। रामनाम सुनकर वे वहीं रुक गये। देखा, तो कोई मनुष्य नहीं था; पर शब्द मात्र सुनाई दे रहा है। इसी समय ज़ोर की वर्षा हुई और बांबी गल गयी। उससे रत्नाकर निकल पड़ा। वल्मीक से निकल आने के कारण उसका

नाम भी 'वाल्मीकि' हो गया था। इस प्रकार सप्तर्षियों के अनुग्रह से ये महर्षि हो गये थे। वाल्मीकिजी ने आदि-काव्य श्रीमद्रामायण की रचना की है। प्रस्तुत आलेख्य में हम शिकारी के रूप में वाल्मीकिजी को देखते हैं तथा सप्तर्षिगण अनुग्रह कर रहे हैं।

4. रैग्व तथा जानश्रुति

जानश्रुति एक बड़ा धार्मिक राजा हो गया है। एक दिन वह अपने महल की छत पर बैठा हुआ था। उसके ऊपर आकाश में दो हंस पक्षी उड़ते हुए बातें कर रहे थे। एक ने दूसरे से कहा "तुम इस राजा के पास से हो कर मत उड़ो। उसकी कीर्ति सारे संसार में फैली हुई है। वह तुमको तीर से मार देगा"। दूसरे ने कहा "यह तो रैग्व ऋषि के समान महिमायुत नहीं है जिन के पास शकट रहा करता है।" प्रथम पक्षी ने उस ऋषि के बारे में प्रश्न किया तो दूसरे ने रैग्व ऋषि की बढी-चढी महिमा का पूरा विवरण कह सुनाया। राजा भी नीचे बैठा हुआ पक्षियों की वे बातें ध्यान से सुन रहा था। रात भर उसे नींद न आयी। सबेरा होने पर सर्वप्रथम उसने अपनें सिपाहियों को महर्षि रैग्व का पता लगाने का आदेश दिया। सिपाहियोंनें सब जगह ढूंढा, फिर भी ऋषि का पता न पा सके। राजा ने फिर भी कहा कि वे

ब्राह्मण कहीं एकान्त में बैठे होंगे और दुबारा जा कर खोज करो। राजा की आज्ञा मान कर सिपाही चले गये।



महर्षि रैग्व और राजा जानश्रुति

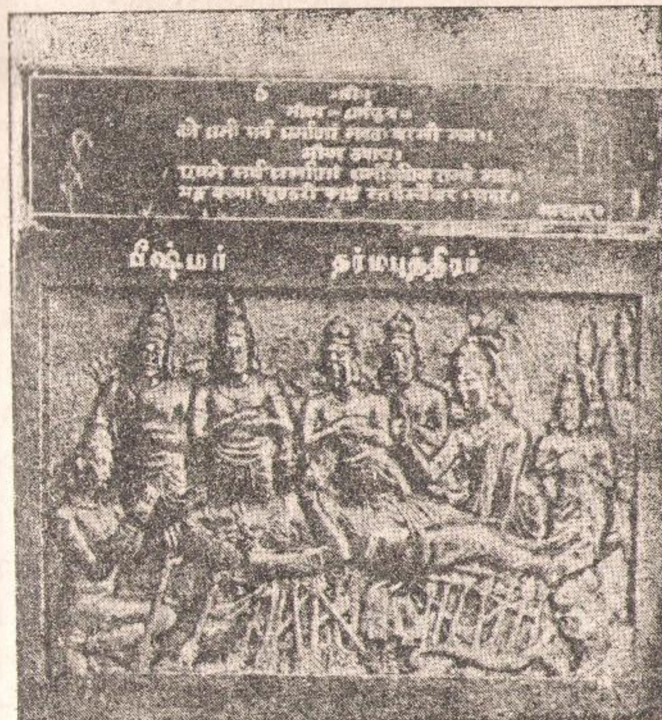
खोजते-खोजते एक पेड़ के नीचे एक गाड़ी देखी। पास ही एक ब्राह्मण-देवता अपना शरीर खुजलाते बैठे थे। सिपाहियों ने पास जाकर उन से प्रश्न किया "क्या आप ही रैग्व ऋषि हैं।" ऋषि ने हाँ किया। बस सिपाही उलटे पांव राजा के निकट पहुँचे और महर्षि के स्थान का ठीक पता दे दिया। राजा नें कई कपड़े-लत्ते, सोने-गहने ले लिये और उन्हें महर्षि को भेंट करके अनुग्रह करनें की प्रार्थना की। महर्षिने उन सब का एकदम तिरस्कार कर दिया। परन्तु राजा हार माननेवाले न थे। उन्होंनें दुबारा अधिक द्रव्यों और अपनी पुत्री को भी उनके चरणों पर अर्पित कर अनुगृहीत करनें की

प्रार्थना की थी। राजा की भक्ति और जिज्ञासा देख कर महर्षि नें उन सब को स्वीकृत किया और राजा को उपदेश भी किया था। उनके उपदेशों का सारांश यह था "अधिदैव में, सूर्य, अग्नि, चन्द्र तथा जल का संवर्ग (लय) स्थान वायु होता है। परन्तु अध्यात्म में वाक्, चक्षु, श्रोत्र तथा मन का संवर्गस्थान प्राण होता है।" प्रस्तुत शिलालेख्य में राजा जानश्रुति को उपदेश देते हुए रैंग्व महर्षि बैठे हुए हैं और राजा, उनकी पुत्री आदि हाथ जोड़कर खड़े हुए दीखते हैं।

5. भीष्म–युधिष्ठिर

कुरुक्षेत्र के भारत युद्ध के समाप्त होने पर युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो चला था। राज्य-शासन में उनका दिल नहीं लगा। बन्धु-बांधवों की मारकाट के कारण उनके मन को शान्ति नहीं मिल सकी थी। वे हमेशा चिन्ताग्रस्त और शोकाक्रान्त रहा करते थे। श्रीकृष्ण समझ गये कि पितामह भीष्म ही उनको शान्ति प्रदान कर सकते हैं। उस समय भीष्मजी शरशय्या में लेटे हुए अपने प्राण छोड़ने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः श्रीकृष्ण युधिष्ठिर आदि भाइयों को लेकर भीष्म के पास जा पहुँचे। पितामह ने युधिष्ठिर को धर्मसंबन्धी कई उपदेश किये जिनका विस्तृत विवरण महा-भारत के आनुशासनिक पर्व में पाया जा सकता है।

युधिष्ठिर नें प्रश्न किया कि इन सब में से आप किसे सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं। भीष्म का उत्तर था कि



भीष्म और युधिष्ठिर आदि

सहस्रनाम के द्वारा भगवान की अर्चा करना ही सब से बढ़ कर उत्तम धर्म होता है। वे इस प्रसंग में विष्णु भगवान के सहस्रों नामों का उपदेश भी देते हैं। इस शिलालेख्य में वही प्रसंग दिखाया गया है।

6. धर्मव्याध–कौशिक ब्रह्मचारी

कौशिक नाम के एक ब्रह्मचारी अपने माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा से विमुख हो कर किसी पेड़ के नीचे योगनिष्ठा और तपश्चर्या में लगे हुए थे। एक दिन ऊपर की डाल पर से एक बगुले ने उन पर बिट् कर दिया था। ब्रह्मचारी महाराज गुस्से में आ गये और तीव्र नेत्रों से ऊपर देखा। उनकी क्रोधाग्नि में पड़ कर वह बगुला भस्म हो कर गिर पड़ा। ब्रह्मचारी जी अपनी इस शक्ति पर गर्वित हुए। नियमानुसार वे भिक्षाटन के लिए पास के गाँव में जा पहुँचे। एक घर का दरवाजा बंद था तो ब्रह्मचारीजी को थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब किवाड़ खुला और घर की ब्राह्मणी दीख पड़ी तो ब्रह्मचारिजी ने क्रोध से उसकी ओर देखा। उनकी मुद्रा का यह मतलब था कि तुमने मुझे इतनी देर तक यहां प्रतीक्षा करने बाध्य कर दिया। गृहिणी हँस पड़ी और कहा "क्या आपने मुझे भी बगुला समझ रखा है।" बस, ब्रह्मचारीजी एक दम अप्रतिभ हो गये। उन्होंने ब्राह्मणी से पूछा कि जंगल में बगुले के भस्म होने की वह बात आप को कैसे मालूम हुई। उस पतिव्रता ने कहा "मैं अपने पति देव की शुश्रूषा बराबर करती आती हूँ मैं और अपने पातिव्रत्य धर्म के बल पर सारी बातें समझ सकी। नारी के लिए इससे बढ़ कर

श्रेष्ठ कर्तव्य या धर्म और कोई नहीं है। अगर आप धर्म के संबन्ध में और भी अधिक बातें मालूम करना चाहते हैं तो धर्मव्याध के पास जाइए जो पास के शहर में कसाई की दूकान रखता है"। तदनुसार ब्रह्मचारी जी धर्मव्याध के यहाँ जा पहुँचे। उसने ब्रह्मचारी जी का आदर-सत्कार किया और तुरन्त पूछ डाला "क्या आपको अमुक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा था?" ब्रह्मचारीजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह देखकर धर्मव्याध



कौशिक ब्रह्मचारी और धर्मव्याध

ने कहा "इस में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। मेरा यह धंधा अपना जातिधर्म है। मैं किसी आसक्ति या अभिनिवेश के बिना अपने पेशे का आचरण करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं अपने बूढे माता-पिता की सेवा-टहल भी करता हूँ। पुत्र के लिए माता-पिता की शुश्रूषा

करना परम धर्म है। इसीसे मुझे सारी बातें मालूम हुईं। आप भी आलस्य छोड़ कर अपने माता-पिता की सेवा शुश्रूषा करें।" धर्म का यह उपदेश ग्रहण करके ब्रह्मचारीजी वहाँ से बिदा हुए। तब से वे अपने माता-पिता की सेवा करने लग गये। प्रस्तुत आलेख्य में यही घटना अंकित की गयी है।

7. याज्ञवल्क्य-जनकमहाराज

याज्ञवल्क्यजी एक प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं। व्यास भगवान् से वैशंपायनजी ने यजुर्वेद का पूर्ण उपदेश पाया था। ये ही वैशंपायन जी याज्ञवल्क्यजी के गुरु थे।



याज्ञवल्क्यजी, उनकी पत्नियाँ और जनकमहाराज

एक बार याज्ञवल्क्य जी अपने गुरु के आदेश से अपने अधीत वेदों को उगल दिया था। बाद को सूर्य भगवान

की उपासना करके उन्होंने वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था। इनके दो पत्नियाँ थीं मैत्रेयी और कात्यायनी। संन्यास ग्रहण करने की इच्छा से ये अपने स्वत्व का विभाजन दोनों पत्नियों में करने लगे तो मैत्रेयी ने प्रार्थना की "मुझे ये चीज़ें नहीं चाहिए। मुझे ऐसी वस्तु दीजिए जिसका कभी नाश न हो"। याज्ञवल्क्य जी ने उसे आत्म-तत्व का उपदेश किया था।

याज्ञवल्क्यजी मिथिलानगरी के राजा जनकजी के भी गुरु थे। एक बार राजा जनक ने विद्वानों और ज्ञानियों की बड़ी सभा बुलायी। कई गायों और बैलों को वादशुल्क के रूप में रखा गया था। फिर उन्होंने यह घोषणा कर दी कि इस सभा में जो कोई ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्मज्ञानी हो वे इन गाय बैलों को ले जा सकते हैं। सब-के सब चुप रहे तो याज्ञवल्क्यजी ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि वे उन गाय-बैलों को आश्रम पर ले जावें। सभावालों ने पूछा कि क्या आप ब्रह्मवेत्ता हैं। उन्होंने जब शास्त्रार्थ करने बुलाया तो याज्ञवल्क्य महाराजने उन सब को परास्त कर दिया। उन्होंने जनकमहाराज को ज्ञानोपदेश भी किया था। जनक महाराज नें उन्हें अपने राज्य तथा अपने को भी भेंट में दे देने का वचन किया था।

एक बार याज्ञवल्क्य जी अपने शिष्यों को ज्ञानोपदेश कर रहे थे। उन्होंने अपने योगबल से मिथिला नगर में आग लग जाने का माया-दृश्य खडा कर दिया था। सभी शिष्य अपने अपने कपड़े-लत्तों की चिन्ता में भाग खड़े हुए। परन्तु अकेले जनकमहाराज निश्चल बैठे हुए थे। पूछने पर उन्होंने जवाब दिया कि मिथिला नगर के जलने से मेरा कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। जनक-महाराज अहंकार-ममता पर विजय पा चुके थे। यही प्रस्तुत उक्ति का मतलब था। याज्ञवल्क्य जी ने जनक-महाराज को जो उपदेश दिया था उसका सार यह था "महाराज, मैं, तुम, सत्, असत् आदि भूतवर्ग सब के सब ब्रह्ममय ही हैं। ब्रह्म को छोड़ कर और किसी वस्तु का पृथक् अस्तित्व नहीं है।" वाद-सभा का चित्रण प्रस्तुत शिलालेख्य में किया गया है।

8. यमराज–नचिकेता

वाजश्रवा नाम के ऋषि एक यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के अन्त में वे अपनी गायों को दक्षिणा में दान करते रहे। न तो उन गायों के दाँत थे और न वे दुधारू भी थीं। वे बूढी हो चली थीं। यह देख कर ऋषि के बेटे नचिकेता को बड़ा दुख हुआ। उसने अपने पिता से पूछा कि आप मुझे किसको देनेवाले हैं। दो बार पूछने पर भी कोई जवाब न मिला। जब तीसरी बार उसने वही

प्रश्न दुहराया तो ऋषि गुस्से में आ गये। अचानक उनके मुँह से ये शब्द निकल पड़े "मैं तुम्हें यमराज को दे दूँगा"। उसके अनुसार नचिकेता भी यमलोक में जा पहुँचे। उस समय यमराज वहाँ नहीं थे। कहीं बाहर गये हुए थे। उनके लौटने में तीन दिन लगे थे। नचि-केता भी वहाँ यमराज की प्रतीक्षा में रहे। यमराज के आने पर सारा हाल मालूम हुआ। तीन दिन तक वहाँ ब्राह्मणकुमार के पड़े रखने के कारण उन्हें बड़ा दुख भी हुआ था। जब इसके बदले में यमराज ने तीन वर मांगने को बताया तो नचिकेता ने उन से वे वर मांगे थे। उनका पहला वर यह था कि मेरे पिताजी का क्रोध जो मेरे प्रति



यमराज और नचिकेता

हुआ था वह शांत हो जाय। यमराज ने मान लिया। नचिकेता ने फिर दूसरे वर से अग्निस्वरूप का विवरण

पूछा तो यमराज ने उस विद्या को विस्तृत रूप से समझाया था। बचा रहा तीसरा वर। सो नचिकेता ने पूछा "मरे हुए मनुष्य के विषय में जो यह संदेह है कि कोई तो कहते हैं 'रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'; आप से शिक्षित हुआ मैं इसे जान सकूँ; मेरे वरों में यह तीसरा वर है"। यमराज ने यह छोड़कर अन्य कोई वर मांगने को कहा। कई कीमती प्रलोभन भी दिये। पर नचिकेता अविचलित रहे। नचिकेता ने कहा कि यही मेरे लिए जानने लायक बात है। अन्त में हार मान कर यमराज ने उसे आत्म-तत्व समझा दिया था। यमराज के उपदेश का सारांश यह था "परतत्व अथवा आत्मतत्व आसानी से समझा नहीं जा सकता। वह सर्वव्यापक और सब में अन्तर्हित होता है। इस तत्व को जो पहचान लेता है वह सुख-दुख के फंदे से मुक्त हो जाता है और वह सब के परे हो जाता है।" इस प्रकार यमराज ने ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मज्ञानी की दशा का विस्तृत रूप से उपदेश किया था। प्रस्तुत आलेख्य में यमराज और नचिकेता दोनों को हम देख सकते हैं।

9. नारद–सनत्कुमार

देवर्षि नारदजी एक बार ब्रह्माजी के मानसपुत्र सनत्कुमार के पास जा पहुँचे। नारदजी ने उन से आत्मज्ञान का उपदेश करने की प्रार्थना की। सनत्कुमार ने

पूछा "अब तक तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है वह बता दो; उसके बाद मैं आत्म-ज्ञान का उपदेश अवश्य करूँगा।" नारदजी ने भी अपने अधीत शास्त्रों का लम्बा-चौड़ा विवरण दिया। उन्होंने कहा "मैं ने चारों वेदों, इतिहास-पुरणों, व्याकरण, नीतिशास्त्र, शकुनशास्त्र आदि अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया है। भूत-विद्या आदि विद्याओं को भी अभ्यास किया है। परन्तु इन सब के अध्ययन से मेरे मन को सच्ची शांति तथा तृप्ति नहीं पहुँच पायी। सुना है कि आत्मज्ञान प्राप्त करने पर शोक की निवृत्ति हो जाती है। आप मुझे शोकमुक्त करने की कृपा करें।"



सनत्कुमार और नारद

इसपर सनत्कुमारजी ने उनको कई तत्वों का उपदेश किया। अन्त में उन्होंने बतलाया "जिसे पाने पर मनुष्य और किसी को देखने या समझने की इच्छा नहीं

करता वही 'भूमा' [अर्थात् सर्वश्रेष्ठ] है। जो सब से महान् और श्रेष्ठ है वही अमृत है और अमर है। जो छोटा है वह अल्प तथा नाशवान् भी होता है। जो सबसे महान है वही आत्मा है, वही अमृत भी है। जो यह अनुभव कर लेता है कि वह आत्मा अपने से भिन्न नहीं है, वही परम सुख प्राप्त करता है।" इस प्रकार सनत्-कुमार जी ने देवर्षि नारद को आत्मतत्व का उपदेश किया था। प्रस्तुत शिलालेख्य उसी का चित्रण करता है।

10. सनत्सुजात–धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र महाराज ने संजय जी को इसलिए पाण्डवों के पास भेजा था कि किसी तरह कौरवों और पाण्डवों के



धृतराष्ट्र, विदुर और सनत्सुजात

बीच संधि हो जाय और इस प्रकार उन दोनों में कोई युद्ध छिड़ न जाय। तदनुसार संजय जी पाण्डवों के पास

हो आये। लौटने पर उन्होंने धृतराष्ट्र से बताया कि पाण्डव लोग बड़े धार्मिक और भगवद्भक्त हैं तथा जो उनका नाश चाहते हैं वे स्वयं नाश हो जायँगे। यह सुनकर धृतराष्ट्र सारी रात विनिद्र पड़े रहे। सबेरे अपने भाई विदुरजी को बुला भेजा। धृतराष्ट्रजी ने विदुरजी से कहा कि तुम मुझे धर्मों का उपदेश करो जिससे मेरे विक्षुब्ध मन को शान्ति मिल जाय। विदुर जी समझ गये कि आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर ही धृतराष्ट्र को मानसिक शान्ति मिल सकती है। अपने को उसके अनुपयुक्त मान कर विदुरजी ने ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत्सुजातजी का स्मरण किया। वे वहाँ प्रगट हुए और धृतराष्ट्र को ज्ञानोपदेश किया था। यह विषय महाभारत के उद्योग-पर्व में सविस्तर बताया गया है। सनत्सुजातजी के उपदेश का सारांश यह है "ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वात्मना पूर्ण है। चाहे जितना भी उससे लिया जाय फिर भी उसकी पूर्णता बनी रहती है। योगी लोग इस तत्व को भली-भांति समझते हैं।" प्रस्तुत आलेख्य इसी प्रसंग की याद दिलाता है।

11. सूत और शौनकादि ऋषिगण

सूतमहर्षि नैमिशारण्य क्षेत्र में शौनकादि ऋषियों को पुराणों की कई कथाएं बतलाते हैं। 'सूत संहिता'

भी उन में से एक मानी जाती है । इस ग्रंथ में भगवान शंकर की महिमा समझायी गयी है । सूतजी कहते हैं



सूत और शौनकादि ऋषिगण

" शिवतत्व ही सब से बढ़ कर श्रेष्ठ होता है जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं होता " ।

12. वाल्मीकि तथा कुश लव

महर्षि वाल्मीकि जी एक दिन अपने आश्रम पर बैठ हुए थे कि नारद भगवान वहाँ आ पहुँचे । वाल्मीकिजी ने

उनकी पूजा-वन्दना करके यह प्रश्न किया था कि इस संसार में ऐसा कौन-सा पुरुष है जो सभी उत्तमोत्तम गुणों से विभूषित हो । नारदजी ने अयोध्याधिपति श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा पुरुष बतलाया तथा श्रीरामचरित का संक्षेप में वर्णन किया था । यही संक्षेपरामायण कहलाता है । नारदजी के बिदा ले जाने के बाद वाल्मीकि जी अपने शिष्यों के साथ मध्यान्ह-स्नान करने केलिए तमसा



वाल्मीकि—कुश लव

नदी के तट पर जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने देखा कि एक पेड़ की डाल पर क्रौंच पक्षियों का एक जोडा बैठा हुआ है । सहसा किसी शिकारी ने उनमें से नर पक्षी पर बाण दे मारा । महर्षि ने उस के इस कृत्य पर संतप्त हो कर शाप दे दिया था । वह शाप एक श्लोक के रूप में निकला था । वे इसी चिन्ता में आश्रम पहुँचे कि ब्रह्मा जी

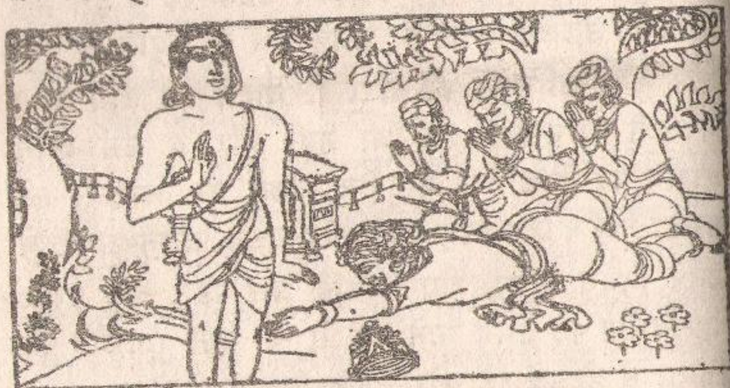
उनके सामने प्रगट हुए और कहा कि मेरी ही प्रेरणा से यह श्लोक तुम्हारे मुँह से निकल पड़ा था और इसी प्रकार के छंदों के रूप में सारे रामचरित की रचना करो। बस, उनकी आज्ञा मान कर वाल्मीकि जी ने श्रीमद्रामायण की रचना कर डाली। वे सोच रहे थे कि किसके द्वारा इस उत्तम काव्य का पठन-पाठन और गायन कराया जाय। उसी समय कुश तथा लव ये दोनों राजकुमार उनके पास आये और चरणवन्दना की। श्रीरामचन्द्र जी के शासन के समय किसी धोबी की कटूक्ति से निर्विण्ण हो कर श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी गर्भिणी पत्नी श्रीसीता जी को जंगल में छोड़ देने की आज्ञा दी थी। संयोग से महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में सीताजी सुरक्षित रहीं और वहीं उन्होंने इन दोनों पुत्रों को जन्म दिया था। इनका पालन पोषण महर्षि ने स्वयं किया था। वाल्मीकिजी ने उन दोनों राजकुमारों को श्रीमद्रामायण का पाठ कराया तथा गाने का आदेश भी किया था। प्रस्तुत शिलालेख्य में यही विषय अंकित किया गया है।

13. जडभरत जी और राजा रहूगण

महात्मा जड़भरत जी भगवान के कलावतार राजर्षि ऋषभदेव के बेटे थे। इनके शासन के समय से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा था जो उसके पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था। जडभरतजी गण्डक नदी में

सन्ध्योपासना कर रहे थे। पास ही एक हिरन पानी पीने आयी। एकाएक सिंह का गर्जन सुन कर वह भय-भीत हुई और पानी में कूद पड़ी। उसके पेट में पूर्ण गर्भ था और उछलने के कारण उसके गर्भ की च्युति हो गयी और मृगछौना पानी की धारा में बहता जा रहा था। भरतजी को उसपर दया आ गयी और वे उसे अपने आश्रम पर ले आये। मातृहीन बछड़े पर भरतजी की ममता दिन ब दिन बढ़ने लगी और उसके पालन-पोषण में उनके नियम, पूजा, ध्यान आदि धीरे धीरे छूट गये। देह-वियोग का समय आने पर भी वे उसी मृगछौने की चिन्ता में ही पड़े रहे और उनका प्राणांत भी हो गया था। अन्तकाल की भावना के अनुसार उनको दूसरे जन्म में मृगजन्म ही मिला था। किन्तु उनकी साधना पूरी थी, इसलिए पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुई; हमेशा बनी रही। अपनी आसक्ति के कारण जो दुर्गति हुई थी इसपर उनको अधिक पश्चात्ताप भी हुआ था। मृगजन्म का भी अन्त होने पर वे किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। पूर्वजन्मों की बातों की याद बराबर बनी रही। अतः वे इस तीसरे जन्म में अपनी सारी आसक्ति छोड़ कर एक उजड्ड की भांति आचरण करने लगे। वे किसी से कुछ भी न बोलते थे। जो कोई उन्हें जो कुछ भी देते, वे उसे खा लेते थे। मूर्ख और जड की भांति उनका सारा

व्यवहार हुआ करता था। इसलिए उनका नाम भी जडभरत हो गया था।



महात्मा जडभरत और राजा रहूगण

एक बार कुछ डाकू लोग इन्हें काली देवी की बलि चढ़ाने पकड़ ले गये। लेकिन कालीदेवीजी इनकी महिमा जानती थीं। देवी जी ने उग्र रूप धारण कर के डाकुओंका वध कर दिया और इनको बन्धनमुक्त भी कर दियाथा। उसके बाद जड भरत जी यत्र-तत्र विचर रहे थे। उस समय राजा रहूगण की पालकी ढोने का काम कहारों के जमादार ने इनको दे दिया। भरत जी चुपचाप पालकी ढोते जा रहे थे। कोई जीव पैरों तले दब न जाय, इस डर से पृथ्वीतल पर दृष्टि गड़ाते हुए धीरे धीरे चल रहे थे। इससे पालकी की गति ठीक न हुई और राजा को कष्ट हुआ। राजा रहूगण इन्हें किराये पर पकड़ा हुआ

कहार समझकर झल्लानें, बुरा भला कहने और ताना मारनें लगा तो भरतजी नें सार-पूर्ण उत्तर दिये। राजा को मालूम हो गया कि ये कोई प्रच्छन्न आत्मज्ञानी और महात्मा हैं। तुरन्त वह पालकी से उतर पड़ा और दण्डवत् करके अपने अपराध की क्षमा मांगी। भरतजीनें राजा को विस्तृत रूप से तत्वज्ञान का उपदेश दिया। उनके उपदेशों का सारांश यह था "यज्ञ, दान, तप आदि से आत्मज्ञान प्राप्त करना आसान नहीं है। महात्माओंकी चरण-वन्दना से ही कोई पुरुष आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है।" प्रस्तुत चित्र में राजा रहूगण पालकी से उतर कर जडभरत जी के आगे प्रणाम करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं।

14. जयदेव-पद्मावती

जयदेवजी एक महान भक्त हो गये हैं। ये श्रेष्ठ कवि और गायक भी थे। भजन-पद्धति के अनुयायियों में ऐसा कोई भी न होगा जो इन की रची हुई 'अष्ट-पदी' को नहीं जानता हो। अष्टपदी का और एक नाम गीतगोविन्द भी है और इसके पदों का भजन सभी गाते हैं। श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं का बढ़िया वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। जीवात्मारूपी राधा परमात्मा-रूपी श्रीकृष्ण से एकता प्राप्त करती है—इसी तत्त्व का

जयदेवजी ने इस काव्य में निरूपण किया है । प्रति दिन ये भगवान के मंगल-विग्रह के सामने अष्टपदी का गान करते तथा उनकी पत्नी 'पद्मावती' गान के अनुसार नृत्य करती थी । एक स्थान पर वे 'पद्मावती चरण—



जयदेव जी और पद्मावती

चारण चक्रवर्ती' लिखते हैं । ग्रंथ के अन्त में वे गाते हैं "इस ग्रंथ के द्वारा उस पर-वस्तु का ज्ञान सब को मिल जाय जिसका प्रकाशन स्वयं वेदपुरुष भी ठीक ठीक समझ नहीं पाते और जो ब्रह्मादि देवताओं को अगम्य ही रही है ।" भजन-गान तथा नृत्य में पति-पत्नी दोनों के आनन्दविभोर हो जाने की झांकी प्रस्तुत शिलालेख्य में मिल सकती है ।

15. विद्यारण्यस्वामी - बुक्कभूपाल

श्रीविद्यारण्यस्वामी जी श्रीशृंगेरि परंपरा के आचार्य थे । इन्होंने विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली थी । हरिहर और बुक्क इन दो राजाओं के शासन काल में



बुक्क, हरिहर और विद्यारण्यस्वामी जी

ये उनके मंत्री भी रह चुके थे । इन्होंने अद्वैत संप्रदाय के कई ग्रंथ रचे हैं जिनमें 'पंचदशी' का प्रथम स्थान होता है । उपनिषत्सार का स्पष्टीकरण 'अनुभूति प्रकाश' नामक ग्रंथ में किया है । इनके अनुज श्री साय-णाचार्य जी थे । इन दोनों ने चारों वेदों का भाष्य भी रचा है । श्री विद्यारण्यस्वामीजी ने बुक्क महाराज को उपदेश दिया था कि धर्म का अवलम्बन करने पर ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है । प्रस्तुत आलेख्य इसी उपदेश-प्रसंग पर प्रकाश डालता है ।

16. मीराबाई - रैदास

'सूखे राजस्थान में भक्ति की सरस धारा बहाने का श्रेय मीराबाई को ही प्राप्त हुआ था। ये 'मेड़ता' की राजकुमारी थीं। लड़कपन की अवस्था में इन्होंने संत रैदासजी के पास श्रीकृष्णचंद्र की आकर्षक प्रतिमा



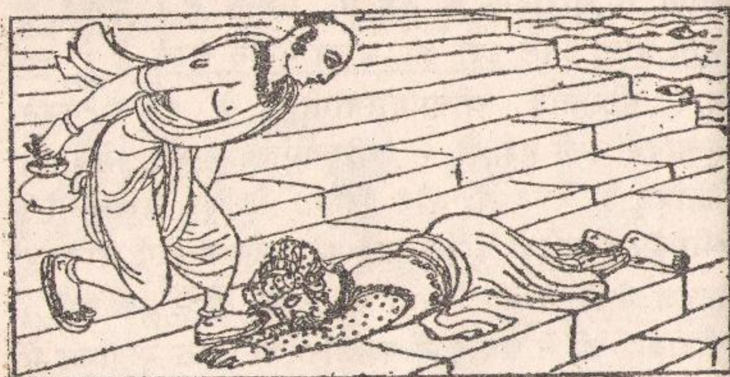
संत रैंदास और मीराबाई

देखी थी। उसे पाने की उत्कण्ठा बढी तो रैंदास जी से उसे प्राप्त की और उस मंगलमूर्ति की आराधना करती रही। पूर्वपुण्यवश उसकी उम्र के साथ साथ श्रीकृष्ण प्रेम भी बढ़ चला। यद्यपि चित्तौड़ के राजकुमार के साथ उनका बिवाह संपन्न हुआ फिर भी उनका मन श्रीकृष्ण में ही रमता रहा। 'भगतन के संग बैठ' कर वह भजन-गान करती रही थी। राजमहलवालों को

भला यह कैसे अच्छा लगता? उन्होंने कई प्रकार से मीराबाई को रोकने का प्रयत्न किया और बाधाएं भी डाली थीं। मीराबाई ने किसी की न सुनी। एक बार 'विष का प्याला राणाजी भेज्यो', परन्तु विष का कुछ भी असर मीरा के शरीर पर न पड़ा। उलटे उसके आराध्य देव की मूर्ति नीली हो गयी थी। श्री कृष्ण की स्तुति में मीराबाई के कई पद मिलते हैं। उत्तर के लोग प्राय: इनके पदों का भजन गायन करते हैं। एक बार मीराबाई श्रीरूपगोस्वामीजी के दर्शन करने बृन्दावन चली हुई थीं। श्रीरूपगोस्वामीजी श्रीचैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और स्त्रियों से दूर भागते थे। श्रीरूपगोस्वामीजी ने मीराबाई को दर्शन न दिये और यह सन्देश भेजा कि हम स्त्रियों को कभी देखते तक नहीं। मीराबाई जी ने जवाब में कहला भेजा "इस बृन्दावन में श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और बाकी सब स्त्रियाँ ही हैं। अगर आप में पुरुषत्व की भावना हो तो बृन्दावन में निवास करेना आप केलिए उचित नहीं है"। मीराबाई की ऐसी परम भक्ति के वशीभूत हो कर तुरन्त रूपगोस्वामीजी ने मीराबाई से भेंट की। 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई' इन का प्रसिद्ध गाना था। आलेख्य में रैंदास-मीराबाई तथा श्री गोपालकृष्णकी प्रतिमा देख सकते हैं।

17. श्रीरामानन्द–कबीरदास

काशी के नीरू नामके मुसलमान ने शिशु के रूप में कबीरदास को पाया था और उनका पालन-पोषण किया था। बचपन से ही उनका मन भक्ति की ओर खिंच गया था। गुरु की खोज में ये इधर-उधर घूमते रहे।



रामानन्दजी और कबीरदासजी

उस समय के श्रेष्ठ रामभक्त श्री रामानन्दजी काशी में ही निवास करते थे। कबीरदासजी ने उन्हीं को गुरु बनानें का विचार किया था। उनके मन में यह संदेह हुआ था कि श्री रामानन्दजी अपने को ग्रहण करेंगे या नहीं। इसलिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। श्रीरामानन्दजी रोज मुंह-अंधेरे स्नान करने गंगाजी की घाट पर जाते थे। एक दिन कबीरदासजी रात को ही उस घाट की सीढी पर लेट

गये। जब तड़के श्री रामानन्दजी वहाँ आये तो अंधेरे में कबीरदासजी के सिर पर अपना चरण रख दिया। श्रीरामानन्द जी सहम गये कि किसी पर चरण रख दिया गया। तुरन्त उनके मुँह से निकल पड़ा "राम राम"। कबीरदासजी ने उठकर उनके चरणों की बन्दना की और हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि आपने मुझे पाददीक्षा और राममंत्रोपदेश एक साथ देने की बड़ी कृपा की है। कबीरदासजी का मुख्य सिद्धान्त हिन्दू-मुसलिम-एकता करना था। हिन्दी में उनके कई पद और साखियाँ मिलतीं हैं। सर्वत्र उन्होंने रामनाम की महिमा पर ज़ोर दिया है।

[श्री शंकरमण्डप की ऊपरी श्रेणी में पूरब से परिक्रमा करने पर निम्न प्रकार के शिलालेख्य हम देख सकते हैं।]

18. श्री शशिवर्ण और श्रीनन्दिपारायण

सूतसंहिता के 'वृद्धाचल महात्म्य' में श्रीशशिवर्णजी की कथा पायी जाती है। श्रीशशिवर्णजी एक ब्राह्मण थे और धार्मिक जीवन बिताते थे। उनके एक पुत्र पैदा हुआ था। युवक होने पर वह बड़ा भ्रष्ट और दुराचारी बन गया था। फलतः रोगों ने उसके शरीर पर घर कर लिया था। पिता जी उसे नीरोग और स्वस्थ बनानें की कामना से क्षेत्राटन करनें लगे। वे दक्षिण भारत के

प्रसिद्ध क्षेत्र वृद्धाचल आ पहुँचे । वहाँ के निवासी श्रीनन्दिपारायण नामक महात्मा की सेवा में उपस्थित हुए ।



श्री नंदिपारायण और शशिवर्णजी

उन्हीं कीं सलाह मान कर वृद्धाचल क्षेत्र में रहते हुए स्नान दर्शनादि करनें लगे । थोडे दिन बीतने पर उनका बेटा तन्दुरुस्त और रोगमुक्त हो गया था। नन्दिपारायणजीने शशिवर्णजी को ज्ञानोपदेश भी किया था। यह "शशिवर्णबोध" तमिल भाषा का एक उत्तम तत्वग्रंथ माना जाता है। प्रस्तुत आलेख्य में महात्मा नन्दिपारायणजी उपदेश देते हुए चित्रित हैं, शशिवर्ण जी वन्दना करते हुए हैं और पास ही उनका रोगी बेटा भी हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ है ।

19. श्री अप्पय्य दीक्षित–श्री नीलकण्ठदीक्षित

महान् अप्पय्य दीक्षितजी का जन्म उत्तर आर्काट जिले के 'अडैयपलम' नामक गाँव में हुआ था। इनके पिताजी का नाम रंगराजदीक्षित था। उन्होंने 'अद्वैत-विद्यामुकुर' नाम के ग्रंथ की रचना की है। यह अद्वैत संप्रदाय का एक उत्तम ग्रंथ है। वे सभी शास्त्रों के



श्री अप्पय्यदीक्षित–श्रीनीलकण्ठदीक्षित

पारंगत थे। उन्होंने सभी शास्त्रों पर उत्तमोत्तम रचनाएं की हैं। अद्वैत, विष्णुविशिष्टाद्वैत, माध्व, शैवविशिष्टाद्वैत आदि सभी संप्रदायों के ग्रंथ इनके लिखे मिलते हैं। श्रीशंकराचार्यजी के ब्रह्मसूत्र भाष्य की व्याख्या 'भामति' नाम से श्री वाचस्पति मिश्र जी ने लिखी है। अमलानन्दजी नें उसपर 'कल्पतरु' नाम की एक व्याख्या रची है।

श्रीअप्पय्यदीक्षितजी ने कल्पतरु की व्याख्या "परिमल" नाम की रची है। ब्रह्मसूत्रों के सम्बन्ध में इनका एक स्वतंत्र ग्रंथ 'न्याय-रक्षा-मणि' भी मिलता है। ब्रह्मसूत्र का शैवपरक श्रीकण्ठभाष्य भी है जिसकी विस्तृत व्याख्या 'शिवार्क-मणि-दीपिका' के नाम से दीक्षितजी ने प्रणयन की है। इन सब के अतिरिक्त कई स्तोत्र-ग्रंथ भी इनके रचे मिलते हैं। इनके भाई के पोते का नाम श्री नीलकण्ठ दीक्षित था। वे भी पहुँचे हुए विद्वान थे। इनके कुटुम्ब का दाय-भाग होने पर श्रीअप्पय्य दीक्षितजी ने श्री नीलकण्ठ दीक्षितजी के हाथों "दुर्गासप्तशती" [जो देवी माहात्म्य भी कहलाता है] ग्रंथ को सौंपते हुए यह आशीर्वाद दिया था कि इसके द्वारा तुम को बड़ा श्रेय मिल सकता है। प्रस्तुत आलेख्य इसी प्रसंग का स्मरण दिलाता है। आलेख्य में इनका एक श्लोक भी खुदा हुआ है जिसमें आचार्य भाष्य की स्तुति की गयी है॥

20. श्री बोधेन्द्र—श्री श्रीधर-वेङ्कटेश

श्रीबोधेन्द्रजी अद्वैतपीठाधिपति श्री गीर्वाणेन्द्र-सरस्वतीजी के शिष्य थे। श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति श्री विश्वाधिकेन्द्र सरस्वतीजी के भी शिष्य हो गये थे और उनके बाद उन्हीं के पीठ पर विराजमान हुए थे। ब्रह्म सूत्र भाष्य पर 'अद्वैत भूषण' नामकी एक व्याख्या इन्होंने लिखी है। श्री शंकराचार्यजी के 'आत्मबोध' की

भी व्याख्या लिखी है। इनके अतिरिक्त 'नामामृत-रसायन, नामामृत रसोदय, हरिहराद्वैत-भूषण, हरिहर-भेद-धिक्कार' आदि ग्रंथों की भी रचना की है। भगवान के नाम की महिमा का प्रतिपादन इन ग्रंथो में किया गया है। इन्हीं के समय श्रीधरवेङ्कटेश स्वामी जी



श्रीधर वेङ्कटेश और श्रीबोधेन्द्रजी

भी तिरुविशनल्लूर में निवास करते थे। इनका अधिष्ठान कुम्भकोणम के पास के तिरुविडैमरुदूर से एक मील दूर गोविन्दपुरम में है। हर साल यहां भाद्रपद के महीनें में इनकी वार्षिक आराधना भी मनायी जाती है। प्रस्तुत शिलालेख्य में इन दोनों के दर्शन हम कर सकते हैं। "भगवान, हरि तथा हर दोनों के नाम-रूपों में प्रकाशमान हैं" यही इनका उपदेश था।

21. भद्राचल रामदासजी

भद्राचल रामदासजी आंध्र प्रान्त के थे। इनका असली नाम गोपन्ना था। ये गोलकोण्डा के सुलतान तानीशाह के यहाँ तहसीलदारी करते थे। इन्होंने मालगुजारी वसूल करने पर उन रुपयों को खजाने में अदा



तानीशाह और रामदास

न करके भद्राचल क्षेत्र के श्रीराममन्दिर के नवनिर्माण में खर्च कर डाला था। यह मालूम होने पर तानीशाह ने इन्हें बारह साल तक कारागृह में भेज दिया। गोपन्ना जेल में श्रीराम का भजन करते रहे। भगवान श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण दोनों ने सिपाहियों का वेश धारण कर लिया और तानीशाह के सामने प्रगट हुए। उन दोनों ने गोपन्ना के रुपये अदा कर दिये थे। तानीशाह तुरन्त जेल में

गोपन्ना से मिला और अपनी गुस्ताखी केलिए माफ़ी मांगी। विषय मालूम होने पर गोपन्ना ने तानीशाह की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि आप ही परम भाग्यवान् हैं जिनको श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन प्राप्त हो गये हैं। भद्राचल के श्रीराममन्दिर का निर्माण करने के कारण गोपन्ना का नाम श्री भद्राचलरामदास पड़ा था। अपने एक भजन में वे बताते हैं "अन्ता राममयम्" अर्थात् सभी राममय ही है। प्रस्तुत शिलालेख्य में उक्त घटना अंकित की गयी है।

22. श्री वाचस्पतिमिश्र और भामति

श्रीवाचस्पति मिश्र जी षट्शास्त्र-पारंगत महाविद्वान हो गये हैं। इनकी धर्मपत्नी का नाम भामति था। आदिशङ्कर भगवत्पाद जी के ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य की इन्होंने विस्तृत और गहन व्याख्या रची है। उसका नाम भामति है। इस व्याख्या के रचने में ये इतने तल्लीन हो गये थे कि अपने जीवन को ही ये भूल गये और यह भी समझ न पाये कि स्वयं मिश्रजी और पत्नी भामति दोनों वृद्ध हो गये हैं। ग्रंथ की समाप्ति होने पर मिश्रजी ने पत्नी से पूछा कि मैं अबतक तुम्हारा ख्याल न कर सका और यदि तुम्हारी कोई इच्छा हो तो उसकी पूर्ति करूँ। भामति ने कहा कि हमारे वंश का नाम उज्ज्वल करने के लिए हमारे कोई सन्तान नहीं है। मिश्रजी ने कहा

"तुम्हारी बात ठीक है और इसके लिए तुम शोक मत करो। लो, मैं अपने इस ग्रंथ-रत्न का नाम 'भामति' रख देता हूँ। हम दोनों के नाम तब तक उज्ज्वल रहेंगे



वाचस्पति मिश्रजी और भामति

जब तक इसका प्रचार संसार में रहेगा।" पत्नी पर यो अनुग्रह करके उन्होंने अपने परिश्रम-पूर्ण ग्रंथ का नाम 'भामति' रखा था। प्रस्तुत शिलालेख्य में इसी दंपति को हम देखते हैं।

23. संत एकनाथ–जनार्दनगुरु

संत एकनाथ जीं महाराष्ट्र प्रांत के थे। इन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना मराठी भाषा में की है। वे पहुंचे हुए भक्त थे। इनके गुरु जनार्दनजी उस समय के राजा के मंत्री तथा सेनापति भीं थे। श्रीएकनाथजी ने

अनेक 'अभंगों' की भी रचना की है। प्राय: अपनी सभी कृतियों में "गुरु एक जनार्दन" की मुद्रा पायी जाती है



संत एकनाथ जी तथा जनार्दनजी

इस प्रकार अपने तथा अपने गुरुनाथ दोनों की छाप रख छोड़ते हैं। इनका उपदेश यह था कि सारी चिन्ताएं दूर रखके हरिनाम का भजन किया करो। प्रस्तुत आलेख्य में गुरु-शिष्य दोनों की झांकी मिलती है।

24. शिवाजी–समर्थ रामदास जी

समर्थ रामदासजी महाराष्ट्र प्रान्त के श्रेष्ठ भक्त और ज्ञानी हो गये हैं। अपने शिष्यों के आत्मलाभार्थ इन्होंने मराठी में 'दास-बोध तथा मानस-बोध' नाम के ग्रंथों की रचना की है। मराठी में इन के कई पद भी मिलते हैं। ये छत्रपति शिवाजी महाराज के ज्ञानगुरु भी

थे । शिवाजीने अपना सारा राज्य इनके चरणों में अर्पण कर दिया था और अपने को उनका प्रतिनिधि



शिवाजी और समर्थ रामदासजी

मान कर ही शासन किया था । आंध्रदेश के भद्राचल रामदास तथा महाराष्ट्र के समर्थ रामदास ये दोनों अपनी भक्ति तथा ज्ञान के लिए सारे देश में प्रसिद्ध हो गये हैं । इनके शिष्यों के कई मठ अब भी तंजाऊर में पाये जाते हैं । शिवाजी महाराज को ज्ञानोपदेश देते हुए समर्थ रामदासजी का चित्रण प्रस्तुत आलेख्य में किया गया है ।

25. श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्रजी और पुदुकोट्टै के महाराज

श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्रजी एक प्रसिद्ध योगीश्वर हो गये हैं । इनका जन्म तंजाऊर जिले के तिरुविशनल्लूर नामके

गांव में हुआ था । ये श्रीकामकोटि पीठाधिपति श्री परम-शिवेन्द्रजी के शिष्य थे जिनकी सिद्धि तिरुवेण्काडु में हो गयी है । श्रीसदाशिव ब्रह्मेन्द्रजी ने ब्रह्मसूत्रशांकर भाष्य की एक वृत्ति 'ब्रह्मतत्व प्रकाशिका' के नाम से रची है । इसके अतिरिक्त 'आत्मविद्याविलास, सिद्धान्त कल्पवल्ली' आदि अनेकों ग्रंथ लिखे हैं । ये सब अद्वैत संप्रदाय के हैं । भक्ति तथा वेदान्त के कई ीर्तनों की भी रचना की है ।



पुदुक्कोट्टै के राजा और श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्रजी

इनकी सिद्धि कावेरी नदी के तट पर 'नेरूर' में हुई थी । ये पुदुक्कोट्टै के महाराजा के गुरु थे । इन्होंने उक्त महाराजा को मंत्रदीक्षा भी दी थीं । प्रस्तुत आलेख्य इसी बात को प्रदर्शित करता है ।

26. गोस्वामी तुलसीदासजी

ये उत्तरप्रदेश के सर्व प्रसिद्ध महात्मा थे । गृहस्थी करते समय इनकी पत्नी एक दिन इनको सूचित किये बिना नैहर चली गयी थी । पत्नी पर इनकी आत्यन्त आसक्ति थी । आधी रात को पत्नी की खोज में ये ससुराल पहुँचे । दरवाज़ा बंद रहा तो पास के लटकते हुए सांप को रस्सी समझ कर पकड़ लिया । ऊपर चढ़ कर आंगन में कूद पड़े और पत्नी से भेंट की । ऐसी बलवती आसक्ति देखकर पत्नी ने उनका धिक्कार किया :—

"लाज न लागत आपको, दौरे आएहु साथ ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ ॥
अस्थि-चर्म-मय यह देह मम, ता सें ऐसी प्रीति ।
तैसी जौं श्रीराम महं, होति न तौ भव भीति ॥"

बस, तत्क्षण ही ये विरक्त बन गये और माया-मोह से दूर हो गये । श्रीहनूमान्जी का साक्षात्कार भी इन्होंने किया था और उन्हीं की कृपा से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन भी इन्हें प्राप्त हुए थे । इन्होंने सारी रामकथा 'अवधी' भाषा में लिखी है । इस प्रसिद्ध ग्रंथरत्न का नाम 'रामचरितमानस' है जो 'तुलसीरामायण' के नाम से भी विख्यात हुआ है । "श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये, ते संसार-पंतग-घोर-किरणैर्दह्यन्ति नो

मानवाः ।" इनके मानस की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । विनयपत्रिका आदि कई ग्रंथ तथा कई पद भी



श्री गोस्वामी तुलसीदास

इन्होंनें रचे हैं । हिन्दीभाषा-भाषी मानस का गायन बड़ी ही भक्ति के साथ करते हैं । इनके बारे में श्री मधुसूदन सरस्वतीजी की यह उक्ति खूब प्रसिद्ध और यथार्थ भी है :—

"आनन्दकानने कश्चित् जंगमस्तुलसीतरुः ।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥"

27. श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु

बंगाल-प्रान्त के नवद्वीप में महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य जी का जन्म हुआ था। संन्यास लेनें के पहले इनका शुभ नाम 'निमाय' था। ये न्याय शास्त्र के गंभीर पण्डित



श्री चैतन्य महाप्रभु

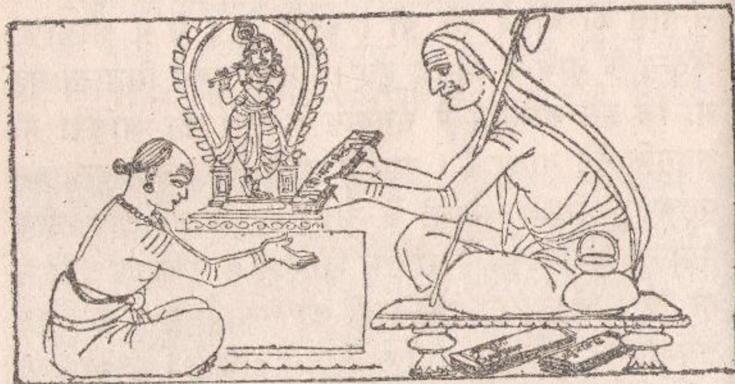
थे। एक बार ये जगन्नाथ पुरी गये हुए थे। जगन्नाथजी के दर्शन करने पर एकदम ये संज्ञाशून्य हो गये थे और भूमि पर गिर पड़े थे। भक्ति की आनन्दमग्न दशा में

वहीं हमेशा भजन-कीर्तन करते रहे। भक्तिमार्ग के प्रचार करने के उद्देश्य से इन्होंनें महात्मा 'ईश्वरपुरी से' संन्यास की दीक्षा ली थी। इसके बाद से ये श्रीकृष्ण-चैतन्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका मुख्य सिद्धान्त यह था कि इस कलियुग में भगवान के नाम का आसरा हीं सद्गति देनें वाला है। कहा जाता है कि इन्होंने बृन्दावन पहुंचकर श्रीकृष्णचन्द्रजी के लीला स्थानों का ठीक ठीक पता भी लगाया था। अन्तिम दिनों में ये जगन्नाथ पुरी में ही रहे। चैतन्य संप्रदाय इन्हीं का चलाया हुआ है। इस संप्रदाय के कई लोग बंगाल में पाये जाते हैं। इनका रचा हुआ कोई धर्मग्रंथ नहीं मिलता। लेकिन इन के प्रधान शिष्य श्री सनातनगोस्वामीजी तथा श्रीरूपगोस्वामीजी के रचे कई भक्तिग्रंथ मिलते हैं। चैतन्य संप्रदाय के अनुसार ब्रह्मसूत्र भाष्य भी पाया जाता है।

28. श्रीमधुसूदनसरस्वती और श्री बलभद्रजी

श्री मधुसूदनसरस्वती जी अद्वैत संप्रदाय के कई ग्रंथों के निर्माता हैं। ये भी बंगाल के थे। 'अद्वैतसिद्धि, अद्वैतरत्नरक्षण, गूढार्थदीपिका, सिद्धान्तबिन्दु' आदि कई मुख्य मुख्य अद्वैत ग्रंथ इन्हीं के रचे हुए हैं। उनका मन बंसी धर श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट हो गया था। 'कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जानें' अर्थात् 'श्रीकृष्ण चन्द्र को छोड़ कर दूसरा कोई तत्व में नहीं जानता'।

इसप्रकार वे अपनी गूढ़ार्थदीपिका में बताते हैं। गूढार्थ-दीपिका श्रीमद्भगवद्गीता की एक व्याख्या है। वे लिखते



श्री बलभद्रजी और श्री मधुसूदनसरस्वतीजी

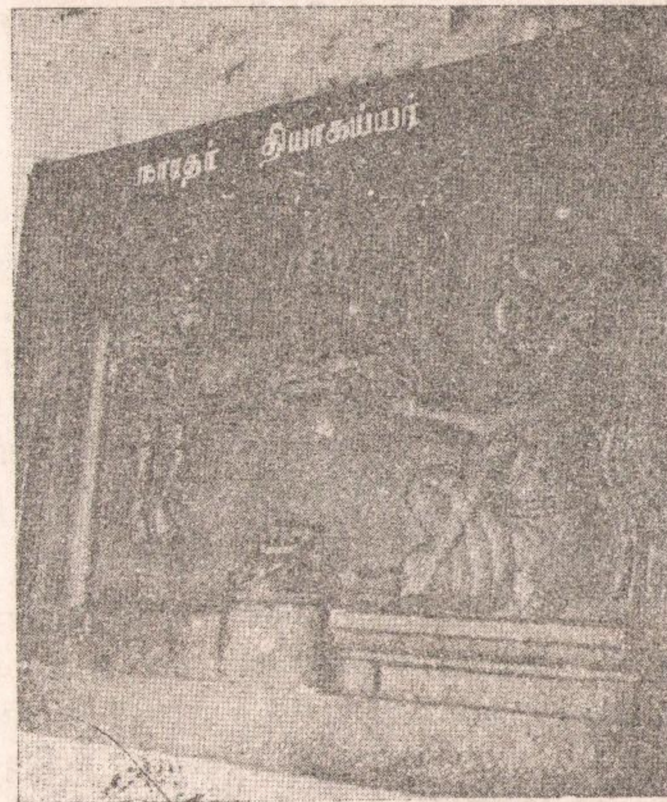
हैं "निर्गुण ब्रह्म की उपासना करके उसका ध्यान जो कर सकते हों वे उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करें, परन्तु मेरा मन तो यमुनातीरसंचारी श्याम रंगवाले श्रीकृष्ण पर ही रम गया है"। संस्कृत का वह श्लोक यह है:—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचन चमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलं महो धावति॥

अपने शिष्य श्री बलभद्रजी की प्रार्थना पर ही इन्होंने 'सिद्धांत-बिन्दु' की रचना की थी। प्रस्तुत आलेख्य में यह

दिखलाया गया है कि वे अपने शिष्य बलभद्रजी के हाथ अपना ग्रंथ सिद्धान्त-बिन्दु देते हुए अनुगृहीत कर रहे हैं।

29. संत त्यागय्या



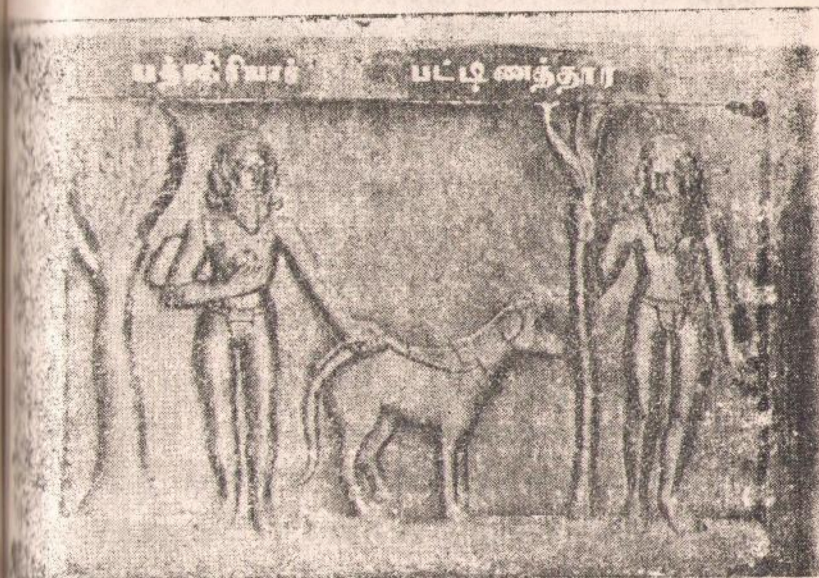
देवर्षि नारदजी तथा संत त्यागय्या

सत त्यागय्याजीं का जन्म तंजाऊर जिले के तिरुवारूर में हुआ था। उसी क्षेत्र के देवता के नाम पर इनका नाम भी 'त्यागराज' रखा गया था। ये पहुंचे हुए श्रीरामभक्त थे। इन्होंने तेलुगु भाषा में हजारों कीर्तनों की रचना की है जिनमें भक्तिरस का प्रवाह उमड़ रहा है। कहा जाता है कि एक बार देवर्षि नारदजी इनके सामने प्रगट हुए और संगीत का एक ग्रंथ दे गये थे। यह भी बताया जाता है कि जब एक दिन ये तन्मय होकर गायन कर रहे थे तब श्रीसीतालक्ष्मण समेत भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने स्वयं इनको दर्शन दिये थे। ये कावेरी नदी के किनारे 'तिरुवैयारु' क्षेत्र में निवास करते थे। संन्यास आश्रम ग्रहण करनें पर इनकीं सिद्धि भी वहीं हुई थी। हर साल पौष बहुल पंचमी के दिन पर दक्षिण के प्रायः सभी गायक लोग यहाँ जमा होते और बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ इनकी आराधना मनाते हैं।

30. पट्टिनत्तार और भद्रगिरियार

संत पट्टिनत्तार तंजाऊर जिले के 'कावेरिपूम्पट्टिनम' के थे। यही कारण है कि लोग इन्हें आदर-पूर्वक पट्टिनत्तार के नाम से ही पुकारते हैं। इनका वास्तविक नाम श्वेतारण्य था। पास के तिरुवेण्काडु क्षेत्र के शिवजी का नाम 'श्वेतारण्य' है। माता-पिता नें अपने बेटें का यही नाम रखा था। कहा जाता है कि एक बार शिवजी

और कुबेर ये दोनों कावेरिपूम्पट्टिनम में पधारे थे। उस नगर की श्रेष्ठता देखकर कुबेर के मन में उस नगर के प्रति मोह पैदा हुआ था। शिवजी ने भी उसे वहाँ जन्म लेनें की आज्ञा दी थी। कुबेरजी की प्रार्थना के अनुसार



पट्टिनत्तार्

शिवजीं ने यह भी वचन दिया था कि उचित समय पर हम तुम पर अनुग्रह करेंगे। कुबेर का ही अवतार पट्टिनत्तार के रूप में हुआ था।

युवक होने पर पट्टिनत्तार तिजारत करनें लग गये। उनके कोई संतान न थी। किसी ने उनके पास एक बच्चा लाकर सौंप दिया। उसी को अपना पुत्र मान कर पालन करने लगे। पुत्र के बड़े होने पर अपना व्यापार आदि भी उसके जिम्मे सौंप दिया था। एक बार वह बेटा नगर के कई वणिज कुमारों के साथ तिजारत के निमित्त बाहर गया था। जब सभी साथी धनसंपत्ति जुटा लाये तो पट्टिनत्तार का बेटा एक पेटी भर चोकर [भूसी] लाया था। पट्टिनत्तार यह जान कर झूझलाये और पुत्र पर क्रोध प्रगट किया। इसके बाद बेटे ने अपनी माता के हाथ में एक पेटी देकर उसे पिताजी के पास पहुँचानें को कहा और स्वयं अन्तर्धान हो चला था। वह पेटी पट्टिनत्तार के हाथ लगी और खोल कर उन्होंने देखा तो उसमें चोकर के बदले स्वर्ण-कण भरे पड़े थे। उसमें एक चिट भी रखा गया था जिस पर यह लिखा हुआ था "जीव की अन्तिम यात्रा के अवसर पर टूटी हुई सुई तक उसके साथ नहीं चलती!"। बस, पट्टिनत्तार के मन में बैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंनें अपना सारा धन गरीबों में बांट दिया। कौपीन मात्र धारण करके संत के वेश में घर से निकल पड़े। क्षेत्राटन और शिवदर्शन करते हुए अपनें दिन काटने लगे। इन्होंने कई पद रचे हैं। उन सबमें बैराग्य की भावना भरी हुई है। बाद को

भद्रगिरियार नामके इनके एक शिष्य भी हो गये थे। पट्टिनत्तार अपने जीवन के अंतिम दिनों में मद्रास के पास के 'तिरुवोट्रियूर' में रहे और वहीं ईश्वर से एकाकार हो गये थे। प्रस्तुत आलेख्य में पट्टिनत्तार और भद्रगिरियार ये दोनों अंकित किये गये हैं।

IV. नारीरत्नों के शिलालेख्यों का विवरण

[श्रीशंकरमण्डप के दक्षिण की दीवार पर से उत्तर की दीवार तक ऊपरी भाग में प्रथम अठारह शिलालेख खुदे पाये जा सकते हैं ।]

1. औवैयार

चोलदेश के 'उरैयूर' में औवैयार का जन्म हुआ था । इनके पिता का नाम 'भगवन' और माता का नाम 'आदि' था । माता-पिता दोनों पर्यटन करते थे । उन दोनों में यह शर्त बंधी हुई थी कि यात्रा के समय जहाँ कहीं बच्चे का जन्म होने पर उसे वहीं छोड़ कर यात्रा जारी रखनी चाहिए । औवैयार का जन्म हुआ तो नन्हीं बच्ची का मुखड़ा देखकर तथा अपनी शर्त की याद कर माता की आंखों में आँसू उमड़ आये और वह अत्यन्त दुखी हुई । नवजात शिशु के मुँह से सांत्वना की यह वाणी फूट निकली "परमेश्वर सब के भाग्यविधाता हैं । सभी अवस्थाओं में जीवराशियों की रक्षा भी वे ही करते हैं । मेरा भार लेनेवाले वे मर तो नहीं गये! इसलिए तुम दुखी मत बनो ।" यही शिशु आगे चल कर "औवैयार" के नाम से प्रसिद्ध हुई । सरल तमिल भाषा में इन्होंने कई उपदेश तथा नीति के ग्रंथ लिखे हैं । स्कूल जानेवाले छोटे छोटे बालकों के पाठ्यक्रम में बहुधा

इनकी सूक्तियां तथा पद्य स्थान पाते हैं । उस ज़माने के सभी राजा-महाराजाओंनें औवैयार का बड़ा आदर-सम्मान किया था । "आत्तिशूडि, कोंरैवेदन, मूदुरै, नलवळि, विनायकर अहवल, आदि कई तमिल के ग्रंथ इनके रचे हुए मिलते हैं ।



औवैयार श्रीगणेशजी की सूंड पर

एक बार श्रीसुन्दरमूर्ति नायनार [एक प्रसिद्ध शैवसंत] के साथ ये कैलाश की यात्रा में निकलने वाली थीं । अतः भगवान श्रीगणेशजी की पूजा में ये जल्दबाज़ी करने लगीं । इनकी आतुरता और जल्दबाज़ी देखकर श्रीगणेशजी ने कारण पूछा तो इन्होंने कहा कि सुन्दरमूर्तिजी के साथ मुझे भी कैलाश की यात्रा करनी है । इस पर श्रीगणेशजी ने कहा "इसके लिए घबराने

की कोई आवश्यकता नहीं है । तुम सावधानी के साथ पूजा समाप्त कर सकती हो । सुन्दरमूर्ति जी के वहाँ पहुँचने के पहले ही कैलाश में तुम को मैं पहुँचा दूंगा ।"— तदनुसार पूजावसान में विनायकजी ने अपनी सूंड से उन्हें उठाकर कैलाश में पहुँचा दिया था । प्रस्तुत शिलालेख्य इसी प्रसंग की याद दिलाता है ।।

2. वासुकि

ये तमिल भाषा के 'तिरुक्कुरळ' के प्रणेता तिरुवळ्ळुवनायनार कीं धर्मपत्नी थीं । किसी भक्त नें एक बार तिरुवळ्ळुवर के पास आया और प्रश्न किया कि गृहस्थ धर्म श्रेष्ठ है या संन्यासधर्म । उसी समय तिरुबळ्ळुवर ने अपनी पत्नी को वहाँ बुलाया । वासुकि उस समय कुएँ में से पानी भर रही थीं । रस्सी और घड़े को वैसे ही छोड़ कर वहाँ उपस्थित हो गयीं । घड़ा भी बीचों बीच कुएँ पर रुका रह गया । तिरुवळ्ळुवर ने आगन्तुक को वह घड़ा दिखलाया और कहा "अगर पत्नी ऐसी पतिव्रता रहे तो गृहस्थधर्म ही श्रेयस्कर है, नहीं तो संन्यास ग्रहण करना ही उत्तम है" । इस संबन्ध में तमिल का एक पद्य भी प्रचलित है जिसका अर्थ यह होता है कि अगर पत्नी अनुरूप मिल जाय तो जींवन भर सुख-मय जीवन बिता सकते हैं, परन्तु अगर वह झगडालू हो तो चुपचाप संन्यास ग्रहण करना चाहिए ।

तिरुवळ्ळुवर बुनकर का पेशा करते थे । किसी दिन दोपहर को सूत कात रहे थे कि तकली कहीं नीचे गिर पड़ी । उन्होंने अपनी पत्नी से उसे ढूंढनें के लिए दीपक लाने की आज्ञा दी । उस पतिव्रता ने यह भी नहीं पूछा



वासुकिदेवी

कि सूर्य के प्रकाश के रहते तकली खोजने के लिए दीपक की क्या आवश्यकता है । उसने तुरन्त दीपक ला कर रख दिया । एक दिन ये दही मिला हुआ भात भोजन कर रहे थे । उन्होंने कहा कि भात गरम लगता है । तुरन्त वासुकि पंखा झलने लगी । भोजन के लिए बैठते समय एक सुई और एक गिलास पानी पास रख देने की आज्ञा इन्होंने दे रखी थी और रोज़ वासुकि भी वैसा करती थी । रोज वे दोनों बेकार पड़े रह जाते और तिरुवळ्ळुवर भोजन भी कर चुकते थे । वासुकि के मन में

इसका कारण पूछने की इच्छा तो हुई, लेकिन कभी पूछती न थी। वासुकि के मरने के कुछ समय पहले तिरुवळ्ळुवर ने यों कह कर उसका संदेह दूर किया था कि परोसते समय अन्न का कण यदि बिखर जाय तो सुई से लेकर पानी में धोने के मतलब से मैं ने वह आज्ञा दी थी, लेकिन तुम्हारी सावधानी के कारण ऐसा अवसर मुझे कभी न आया था। वासुकि के मरने के बाद शोकाक्रान्त तिरुवळ्ळुवर ने एक कविता में यों अपने उद्गार प्रगट किये थे "रुचिकर भोजन तैयार कर तुम मुझे खिलाती थी, तुम्हारा प्रेम बढा-चढा था, मेरी बात का कभी उल्लंघन न करती थी, हमेशा मेरी चरण सेवा करती रही थी, मेरे सो जाने के बाद तुम सोती और मेरे जागने के पहले तुम जाग उठती थी, तुम मुझे छोड़ चली गयी हो, अब मैं कैसे आराम की नींद लूंगा?" कुएं पर घड़ा बीच ही में छोड़कर वासुकि का तिरुवळ्ळुवर के पास आने का दृश्य प्रस्तुत आलेख्य में अंकित किया गया है ॥

3. कण्णकि

कण्णकि का दूसरा नाम "पत्नी-दैव" भी है। यह 'कोवलन' की पत्नी थी। कोवलन ने 'माधवी' नाम की वारविलासिनी के प्रेम में फंस कर अपनी सारी जायदाद खो डाली थी। उसके बाद अपनी पत्नी कण्णकि को

लिए हुए मदुरा जा पहुँचा। वहाँ की बाजार में कण्णकि के एक नूपुर को बेचने के उद्देश्य से ले गया और किसी सुनार के हाथ दिया था। महारानी का एक नूपुर चोरी में गया था। सुनार ने रानी के नूपुर की चोरी का अपराध कोवलन के मथ्थे मढ दिया और उसे पाण्डय राजा के सामने उपस्थित किया था। वह नूपुर



कण्णकि

भी रानी के नूपुर का सा था। इसलिए राजा ने ठीक जाँच पड़ताल न करके जल्दबाज़ी में कोवलन को मृत्युदण्ड दे दिया। कोवलन के मारे जाने के बाद उसकी पत्नी कण्णकि राज दरबार में आयी और यह प्रमाणित किया कि वह नूपुर कण्णकि का ही था, रानी का नहीं। राजा को बड़ा दुख हुआ और वहीं उसके प्राण भी निकल गये। उसके बाद कण्णकि अपने पातिव्रत्य की आग में मदुरा नगर को

ही जला डाला । पश्चिमी पर्वत पर चली गयी और वहां से स्वर्ग सिधार गयी । आज भी कई स्थानों पर लोग इस "पत्नीदैव" की आराधना करते हैं । इसी कथा का विस्तृत वर्णन इळंगोवडिकळ ने अपने 'चिलप्पदिकारम' में किया है जो तमिल के पंच महाकाव्यों में एक माना जाता है ।

4. अरुन्धती

कर्दमप्रजापति की पुत्रियों में अरुन्धती भी एक थीं । कर्दमजीने इसका विवाह वसिष्ठ ऋषि के साथ करा दिया



अरुन्धती

था । यह बड़ी ही उत्तम पतिव्रता थी । विवाह के दिन रात को वर अपनी वधू को अरुन्धती का दर्शन कराता है, यह प्रथा अब भी चलती है । अरुन्धती के समान वधू को

भी पातिव्रत्य का निर्वाह करना चाहिए, यही इसका मतलब है । आकाश के सप्तर्षिमण्डल के वसिष्ठ नक्षत्र के पास अरुन्धती का छोटा सा नक्षत्र देखा जा सकता है । वर पहले अपनी वधू का ध्यान बड़े नक्षत्र की तरफ़ आकर्षित करता है और बाद इस छोटे नक्षत्र को दिखाता है । इसी आधार पर शास्त्रों में "स्थूल अरुन्धती न्याय" भी चल पड़ा है । एक बार अग्निदेव सप्तर्षियों की सुन्दरता पर मुग्ध हुआ था । उसकी पत्नी स्वाहा देवी ने यह बात ताड़ ली थी । उसने ऋषि पत्नियों का सा रूप धारण कर अपने पति को प्रसन्न किया था । लेकिन वह भी वसिष्ठ पत्नी अरुंधती का रूप ले न सकी थी । प्रस्तुत शिलालेख्य में हम देखते हैं कि वसिष्ठ ऋषि अपने आश्रम की अग्निहोत्र शाला में विराजमान हैं और अरुन्धती अग्निहोत्रार्थ नन्दिनी का दूध लिये आ रही है ।

5. अनुसूया

अनुसूया अत्रिमहर्षि की पत्नी और उत्तम पतिव्रता थीं । श्रीरामचन्द्र जी दण्डकारण्य में प्रवेश करते समय सीतालक्ष्मण सहित इनके आश्रम मे पधारे थे । तब सीताजी ने अनुसूया देवी की पूजा की थी । अनुसूया ने सीताजी को पातिव्रत्य की महिमा बतायी । अनेक आभरण देकर उसे अनुगृहीत भी किया था । एक बार कई साल लगातार की अनावृष्टि के कारण बड़ा अकाल

पड़ा था। अनसूया ने अपने पतिव्रताधर्म के बल पर वर्षा होने दी थी। ब्रह्मा विष्णु तथा शंकर इन तीनों को अपने तीनों पुत्रों के रूप में पायी थीं। ये ही चंद्र, दत्तात्रेय तथा दुर्वासा थे। एक बार तींनों देवताओंने



अनुसूयादेवी

(ब्रह्माविष्णुरुद्र) इन के पातिव्रत्य की परीक्षा करने के उद्देश्य से ब्राह्मणों के वेश में गये और भिक्षा मांगी थी। उनकी शर्त यह थी कि वह नग्न होकर भिक्षा प्रदान करे। अनुसूया ने वह शर्त मंजूर की और अपने पातिव्रत्य के बल पर तीनों देवताओं को शिशु के रूप में परिवर्तित कर डाला। फिर अनुसूया ने उन तीनों शिशुओं को दूध पिलाया और पालने में डाल कर सुला दिया था। अपने-अपने पति की अनुपस्थिति में सरस्वती, लक्ष्मी तथा

पार्वती ये तीनों चिन्तित और उद्विग्न हुई थीं। नारदजी के द्वारा उनको सारा हाल मालूम हुआ तो वे तीनों अनुसूया के आश्रम पर पहुँचीं और अपने-अपने पति को लौटाने की प्रार्थना की थी। यही विवरण प्रस्तुत आलेख्य में दिया गया है।

6. लोपामुद्रा-कावेरी

पतिव्रता लोपामुद्रा अगस्त्य ऋषि की पत्नी थीं। यह पहुँची हुई देवी-भक्तिन भी थी। कहा जाता है कि अगस्त्य की अनुमति पाकर लोपमुद्रा ने एक अंश के रूप में अगस्त्य जी के साथ रहने लगी और अपने दूसरे अंश



लोपामुद्रा-कावेरी

के रूप में लोक कल्याण के निमित्त कावेरी नदी बन कर बह चली थी। यह भी कहा जाता है कि ऋषि अगस्त्य के

कमण्डलु के पानी को श्रीगणेश जी ने कौए का रूप धारण कर लुढ़क दिया था और उसी पानी के साथ साथ लोपामुद्रा भी कावेरी के रूप में बह चली थी। प्रस्तुत दोनों शिलालेख्य इसी प्रसंग का स्मरण दिलाते हैं।

7. मन्दोदरी

सती मन्दोदरी दशकण्ठ रावण की पत्नी थी। प्रात:स्मरणीय पंच कन्याओं में इसकी भी गणना की गयी है। वे क्रमश: अहल्या द्रौपदी सीता तारा और मन्दोदरी



सती मन्दोदरी

हैं। यह परम सुन्दरी भी थी। हनुमानजी नें लंका में प्रवेश कर सीता जी की खोज करते समय अन्त:पुर के एक ओर के शयनासन में सोते हुए रावण को तथा पास ही दूसरे शयनासन में मंदोदरी को देखा था। मन्दोदरी के

रूप-लावण्य को देखकर हनूमान जी को सीताजी का भ्रम हो गया था। फिर वे इस निर्णय पर पहुँचे कि पति श्रीरामचन्द्रजी के वियोग में सीता जी कैसे चैन की नींद ले सकती, अत: यह सीताजी नहीं है। मन्दोदरी को भगवान् श्री रामचन्द्र की असली महिमा का भान भी हो चला था। रावण के वध के बाद वह बोल उठती है कि श्रीरामचन्द्र जी साक्षात् विष्णु हैं। वह विलाप करती हुई यों बताती है "सीता किसी भी बात में मुझ से श्रेष्ठ नहीं है, फिर भी दुर्भाग्य के कारण तुम्हारी (रावण की) आसक्ति उसपर हुई और फलस्वरूप तुम्हारा निधन हुआ था। प्रस्तुत चित्र में शयनागार की खोज हनूमान् द्वारा की जाती है।

8. सीता

यह बात सभी को मालूम है कि श्रीसीताजी भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी थी और वे अयोनिजा थीं। यज्ञ भूमि पर हल चलाते समय जनकमहाराज ने इन्हें प्राप्त कर लिया था। अपने पिताजी के आदेशानुसार जब श्री रामगन्द्र जी वन में गये तब ये भी उनके साथ निकली थीं। वन में परम पतिव्रता अनुसूया की भेंट की तथा अनेकों आभूषणों के साथ आशीर्वाद भी प्राप्त किया था। रावण ने जब इन्हें अशोकवन में ले जा कर रख

दिया तब दिन रात श्री रामचन्द्रजी के चिन्तन में मग्न रही थीं । हनुमान् जी ने जब श्रीरामचंद्रजी का वृत्तान्त बताया और तत्क्षण ही कंधे पर लिये उन्हें रामचन्द्रजी के पास पहुँचाने की प्रार्थना की थी तब इन्होंने साफ़



श्री सीताजी

इनकार कर दिया था। उन्होंने कहा कि श्री रामचन्द्रजी को छोड़ कर और किसी पुरुष का स्पर्श में नहीं कर सकती । रावण के वध के बाद अपने पातिव्रत्य का प्रमाण इन्होंने अग्निप्रवेश के द्वारा दिया था । अगर ये चाहतीं तो अपने ही पातिव्रत्य की आग में रावण को भस्म कर सकतीं । परन्तु रावण के वध का गौरव अपने पति को प्रदान करना ही उचित समझा था । इस आशय को त्यागय्याजी ने 'मा जानकी' वाले प्रसिद्ध कीर्तन में

सुन्दर ढंग से गाया है । प्रस्तुत शिलालेख्य अशोक वन के प्रसंग का है । विभीषणजी की बेटी त्रिजटा अपना शुभस्वप्न वृत्तान्त बताती हुई सीताजी को सान्त्वना दे रही है ।

9. शबरी

यह मतंग ऋषि की शिष्या तथा जाति की भीलनी थी । मतंगाश्रम में निवास करती और महर्षियों की सेवा टहल करती थी । स्वर्ग जाते समय मतंग ऋषिनें कहा



शबरी का सत्कार

कि तुम यहीं पर रहो ; श्रीविष्णु भगवान् के अवतार श्रीरामचन्द्र जी यहाँ पधारेंगे तो उनका आतिथ्य करके सद्गति पा ओगी । वह रोज़ जंगल में घूम-घूम कर अच्छे अच्छे फल चुन लाती और श्रीरामचन्द्र जी को

खिलाने के लिए सुरक्षित रखती थी । जब सीताजी की खोज करते हुए श्री रामचन्द्र जी अपने भाई के साथ मतंगाश्रम पहुँचे तो शबरी ने बड़े प्रेम से उनका सत्कार किया और मीठे मीठे बेर खिलाये थे। उसने श्रीरामचन्द्रजी को सुग्रीव का ठीक ठीक पता भी बतलाया था । श्रीरामचन्द्र जी के समक्ष ही इसने सद्गति भी पायी थी । इस बात का वर्णन हृदयद्रावक रीति से त्यागय्याजी ने "एत्तनि वर्णिन्दुनु शबरी भाग्यमु" वाले कीर्तन में गाया है । श्रीरामचन्द्रजी को फल खिलाने का प्रसंग प्रस्तुत शिलाचित्र में अंकित किया गया है ।

10. चन्द्रमती [शैब्या]

पतिव्रता चन्द्रमती सत्यहरिश्चन्द्र राजा की पत्नी थी । कहा जाता है कि पैदा होते समय इसके गले में मांगल्य भी जुड़ा हु आ था । ऋषि विश्वामित्र जी के द्वारा हरिश्चन्द्र को कई संकटों का सामना करना पड़ा था । राज्य चला गया और वह दर-दर घूम रहा था । फिर भी चन्द्रमती ने पति का साथ न छोड़ा था । काशी के एक ब्राह्मण के हाथ चन्द्रमती की बिक्री हो गयी थी । पति के वियोग में पुत्र का भी मरण हो गया था । श्मशान में पतिदेव से भेंट हुई थी । काशीराज के पुत्र के मारने का अपराध भी चंद्रमती पर लगाया गया । उसको मृत्युदंड दिया गया और स्वयं हरिश्चन्द्र के हाथों उस दंड का



चन्द्रमती [शैब्या]

पालन करना भी पड़ा था । चन्द्रमती तैयार हो गयी तो देवताओं ने हरिश्चन्द्र को रोक दिया और दोनों पर अनुग्रह किया । सत्य का पालन करने में सब कुछ सहने यह आदर्श दम्पति सदा तत्पर रही थी । श्मशान के प्रसंग को ही प्रस्तुत चित्र में अंकित किया गया है ।

11. दमयन्ती

यह विदर्भ देश की राजकुमारी और नलमहाराज की पत्नी थी । एक हंस पक्षी के मुँह से राजकुमार नल के गुणों और प्रभावों को सुन कर इसने मन में नल को ही अपना पति वर लिया था । दमयन्ती की सुन्दरता सुन कर इन्द्र, अग्नि, वायु तथा यम ये चारों देवता लोग नल के वेश में स्वयंवर मण्डप आ पहुँचे । देवताओं की

विशेषताएं पहचान कर दमयन्ती ने असली नल के गले में जयमाला पहनायी थी । यह सुन कर शनि भगवान क्रुद्ध हुए और नल महाराज को कई कष्ट पहुँचाये । जुए में राजा नल ने अपना राज्य हार दिया और दमयन्ती के साथ जंगल में जा पहुँचा । रात के समय नल ने दमयन्ती की साड़ी में से आधा काट डाला और दमयन्ती को वहीं छोड़ कर स्वयं भाग निकला । दमयन्ती जाग पड़ी और नल की खोज करती हुई किसी दुष्ट शिकारी के पंजे में



दमयन्ती हंस के साथ

फंस गयी । परन्तु अपने पातिव्रत्य की अग्नि में उसे जला डाला था । फिर चेदि देश में जा पहुँची । वहाँ से उसके पिताजी उसे अपने महल में ले आये । इसी बीच जंगल में कार्कोटक नाग के डसने से नल का रूप विकृत हो गया था । इसी विकृत रूप में वह ऋतुपर्ण राजा के यहाँ

रसोई का काम करने लग गया था । दमयन्ती ने नल को पाने की एक चाल चली । अपने पिता के द्वारा उसने दूसरा स्वयवर रचने की घोषणा कर दी और यह समाचार राजा ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँचाया । ऋतुपर्ण ने विदर्भ देश के लिए प्रस्थान कर दिया । राजा नल भी उसके सारथि के रूप में विदर्भ देश गया । नल अश्वविद्या में बड़ा निपुण था । कहा जाता है कि इसी अवसर पर राजा ऋतुपर्ण ने नल से अश्वविद्या भी सीखी थी । रास्ते में शनि भगवान नल के सामने प्रगट हुए और आशीर्वाद दिया कि मैं ने तुम्हारा पीछा छोड़ दिया और तुम आगे सुखी रहोगे । नल के विकृत रूप को देख कर दमयन्ती ने अपने पुत्रों को भेज कर उसकी वास्तविकता का निश्चय कर लिया । जब नल वहाँ पहुँचा तो दमयन्ती से पूछा कि दूसरे स्वयंवर की रचना किस उद्देश्य से की गयी है । दमयन्ती ने सारा हाल बताया । उसने यह भी कहा कि अगर यहाँ मेरा स्वयंवर होता तो क्या दूसरे राजा लोग आ गये नहीं होते । राजा नल भी प्रसन्न हुआ । विषय मालूम होने पर ऋतुपर्ण को भी बड़ा आनन्द हुआ । राजा नल कुछ काल तक वहाँ रहे । बाद को उन्होंने पुष्कर को हरा दिया और अपनी राजगद्दी पर बैठ गये । प्रस्तुत शिलालेख्य में हंस-दमयन्ती की बातचीत का प्रसंग दिखलाया गया है ।

12. गान्धारी

यह गांधार देश की राजकुमारी तथा धृतराष्ट्र की धर्मपत्नी थी। दुर्योधन आदि सौ कौरवों की माता भी थी। जब इसे मालूम हुआ कि पति धृतराष्ट्र जन्म के अंधे हैं तो स्वयं इसने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध



गांधारी

डाली ताकि जिस दृष्टि से पति देव वंचित रह गये उस दृष्टि-सुख से स्वयं भी वंचित हो जाय। अध धृतराष्ट्र तथा आंखों पर पट्टी बांधी हुई गांधारी दोनों यहाँ दिखाये गये हैं।

13. पतिव्रता रमणी

कौशिक नाम का एक ब्रह्मचारी किसी पेड़ के नीचे ध्यानावस्था में बैठा था। ऊपर से एक बगुलेने उन पर

विट कर दिया। ब्राह्मण की क्रोध भरी दृष्टि ज्यों ही उस पर पड़ी त्यों ही वह जल भुन कर भस्म हो गया। ब्रह्मचारी को अपनी शक्ति पर गर्व भी हुआ था। एक दिन पास के गांव में वह भिक्षा मांगने गया था। किसी घर के दरवाजे पर खड़े खड़े अधिक समय बीत गया। गृहीणी ने किवाड़ खोला तो ब्रह्मचारी ने उसकी तरफ़ आग्नेय नेत्रों से देखा। ब्राह्मणी ने कहा कि क्या तुमने



कौशिक ब्रह्मचारी और पतिव्रता

मुझे बगुला समझ रखा है। कौशिकजी अचरज में पड़ गये और सोचने लगे कि जंगल की वह घटना इस गृहिणी को कैसे मालूम हुई। ब्राह्मणी ने यह कह कर उसका सन्देह दूर किया कि मैं अपने पति की शुश्रूषा में लगी हुई थी और यह छोड़ कर स्त्री के लिए कोई दूसरा धर्म नहीं है। इसी पतिव्रता धर्म के बल पर बगुले के

चल जाने की बात भी मुझे मालूम हुई थी । धर्म का विस्तृत विवरण मालूम कराने के लिए उसने ब्रह्मचारी को धर्म व्याध के पास भी भेज दिया था । [देखिये पृष्ठ 27] कौशिक ब्राह्मण, पतिव्रता, बगुला ये तीनों प्रस्तुत आलेख्य में अंकित किये गये हैं ।

14. नलायिनी

नलायिनी उत्तमोत्तम पतिव्रता थी । इसके पति ने इस की कड़ी परीक्षाएं की थीं । एक बार अपने तप के प्रभाव से वे कुष्ठरोगी बन गये और इससे कहा कि मुझे



नलायिनी

अमुक वेश्या के घर ढो चलो । नलायिनी एक टोकरी पर इन्हें बैठा कर उसी वेश्या के घर ले गयी । वहाँ जाने

पर वे निजस्वरूप ले लेते थे । यह बात उसे मालूम न थी । परन्तु वह अपने पति की आज्ञा मान चलती थी । यह क्रम कई दिन जारी रहा । एक दिन रात के समय इसकी टोकरी रास्ते की सूली पर टकरा गयी । उस पर आणिमाण्डव्य ऋषि लटक रहे थे । उनको टोकरी के टकाराने से बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने शाप दिया कि सबेरा होने पर यह स्त्री विधवा हो जाय । तुरन्त नलायिनी ने प्रतिशाप दे डाला कि सबेरा ही न हो जाय और रात बनी ही रहे । बस, पतिव्रता के शाप का यह प्रभाव हुआ कि अंधेरा लगा रहा और सूर्य का उदय नहीं हुआ । नियम, निष्ठा, जप, होम आदि कुछ भी नहीं हो पाये । देवताओं के अनुरोध से आणिमाण्डव्य ने अपना शाप फेर लिया था । तब नलायिनी ने भी प्रतिशाप मेट दिया था । इसका पातिव्रत्य देखकर पतिदेव बड़े आनन्दित हुए और आगे इसकी परीक्षा करना छोड दिया था । बहुत समय तक दोनों आनन्दपूर्ण जीवन बिताते रहे । अगले जन्म में इसी नलायिनी ने काशिराज के यहाँ जन्म ग्रहण किया और अगले जन्म में भगवान को अपने पति के रूप में पाने केलिए तप भी किया था । भगवान के प्रगट होने पर अपनी प्रार्थना पांच बार दोहरायी थी । अतः अगले जन्म में द्रुपदराज की पुत्री द्रौपदी के रूप में पैदा हुई और पांचों पाण्डवों की पत्नी भी बनी ।

15. सावित्री

यह अश्वपति महाराज की बेटी थी। सत्यवान की पत्नी थी। विवाह के पहले ही इसने सत्यवान के गुणों को सुनकर अपने मन में उसी को अपना पति वर लिया था। सत्यवान के पिता द्युमत्सेन राज्य खो कर जंगल में



सावित्री

निवास करते थे। उनकी आंखें भी फूट गयी थीं। नारदजी ने यह भविष्यवाणी की थी कि सत्यवान की मृत्यु निकट भविष्य में हो जायगी। ये सारी बातें जान कर भी सावित्री ने सत्यवान से विवाह कर लिया था। पति के आश्रम पर पहुँचने के बाद सावित्री सत्यवान को मरण से बचाने के लिए व्रतानुष्ठान आदि करने लगी। नारदजी की बात ठीक निकली। सत्यवान का अन्तकाल

आ गया और यमराज उसके प्राण लेकर जाने लगे। सावित्री ने अपने पतिव्रत्य के बल पर यमराज का पीछा किया। दोनों बातें करते हुए दूर निकल गये। यमराजने पति के प्राणों के सिवा कोई भी वर मांगने का कहा तो पहले सावित्री ने अपने ससुर का खोया हुआ राज्य मांगा। फिर थोड़ी दूर जाने पर उनके अंधेपन को दूर करने का वर मांगा था। थोड़ी दूर और आगे बढ़ने पर अपने लिए पुत्रप्राप्ति का वर मांगा था। बिना सोचे समझे यमराज ने भी 'हाँ' कर दिया। सावित्री पीछा करती रही। यमराजने लौट जाने को कहा तो सावित्री ने कहा कि पतिदेव के बिना पुत्रवती कैसे बन सकती। यमराज ने उसकी बुद्धि और पातिव्रत्य की बड़ी प्रशंसा की और सत्यवान के प्राण लौटा दिये थे। प्रस्तुत शिलाल्लेख्य इसी प्रसंग का स्मरण दिलाता है।

16. सुकन्या

यह शर्याति महाराज की बेटी थी। एक बार अपने पिताजी के साथ जंगल में जा रही थी जहाँ महर्षि च्यवन तपस्या कर रहे थे। च्यवन के चारों ओर और ऊपर तक बांबी लगी हुई थी। बांबी के किसी छेद से सिर्फ उनकी आँखें चमक रही थीं। सुकन्या यह बात नहीं जानती थी। कुतूहल वश उसने एक सलाई से नोच दिया था। च्यवन की आँखों में बड़ी दर्द हुई थी।

फलतः राजा तथा सेना को कई तकलीफ़ें भोगनी पड़ीं। जब सुकन्या ने अपने पिता से अपनी करतूत बतायी तो राजा उसे ले जाकर च्यवन महर्षि के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा मांगी। महर्षि ने राजा से कन्यादान में सुकन्या को मांगा था। राजा सोच में पड़ गये थे कि इस बूढे के साथ अपनी सुन्दरी कन्या का विवाह कैसे करा दूँ। सुकन्या ने दृढता से कहा कि हमारी प्रजा तथा देश के हित के लिए मैं इन्हीं से विवाह कर लेती हूँ। विवाह होने पर सुकन्या महर्षि च्यवन की शुश्रूषा भक्तिश्रद्धा-



सुकन्या

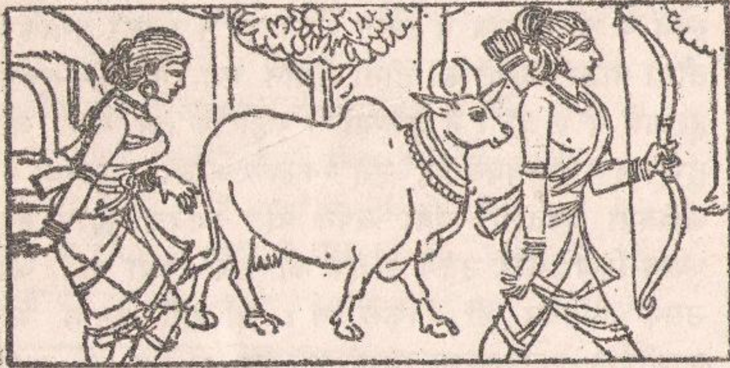
पूर्वक करती रही। च्यवन भी उससे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अश्विनीकुमारों से कहा कि तुम दोनों को यज्ञ में हविर्भाग नहीं मिल रहे हैं; आगे से तुम दोनों को मैं हविर्भाग दिलाने का प्रबन्ध करूँगा और तुम मुझे पूर्ण

यौवन प्रदान करो। अश्विनीदेवताओं ने मान लिया और महर्षि को पास के तालाब में स्नान करने को कहा। स्वयं वे भी तालाब में स्नान करने गये। डुबकी लगाकर तीनों बाहर निकले तो तीनों समान रूप-रंग-वाले युवक हो गये थे। तीनों ने सुकन्या से कहा कि हम में से जो तुम्हारा पति च्यवन हो, उसे पकड ले जाओ। सुकन्या ने अश्विनी देवताओं तथा अपने पति च्यवन महर्षि का ध्यान किया और उनमें से एक का स्पर्श किया था, जो उसके पतिदेव ही निकले थे। अश्विनी देवता भी आशीर्वाद देकर अपना स्थान चले गये। कुछ ही काल बाद जब महाराजा अपनी बेटी को देखने के विचार से वहाँ आये और आश्रम पर एक अपरिचित युवक के साथ उसे देखा तो बड़े गुस्से में आये। सुकन्या ने सारा हाल पिताजी से बताया। रामायण में जब सीताजी अनुसूया जी से बातें करती हैं तो वह कहती है "जैसे सुकन्या ने च्यवन का अनुसरण किया वैसे ही मैं श्रीरामचन्द्र जी का अनुसरण करती रहती हूँ। सुकन्या, च्यवन, आश्विनी कुमार ये सब प्रस्तुत आलेख्य में अंकित किये गये हैं।

17. सुदक्षिणा

यह इक्ष्वाकु वंश के लब्ध–प्रतिष्ठ रघुचक्रवर्ती की माता तथा राजा दिलीप की धर्मपत्नी थी। बहुत समय तक पुत्र भाग्य न हुआ तो चिन्ताग्रस्त राजा दिलीप के

वसिष्ठ ऋषि से प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा-टहल किया करो और उसके



सुदक्षिणा

अनुग्रह से तुम दोनों को पुत्र प्राप्ति होगी। तदनुसार राजा दिलीप नन्दिनी की आराधना करने लगा। रोज़ सबेरे आश्रम से उसे चरागाह ले जाता और संध्या के समय वापस ले आता था। सुदक्षिणा भी थोड़ी दूर तक आश्रम से राजा और नन्दिनी के पीछे जाती थी। इस दृश्य का महाकवि कालिदास नें बढिया वर्णन अपने महाकाव्य रघुवंश में किया है। कवि का वर्णन है कि उक्त नन्दिनी के चरणों की धूलियों से वह मार्ग पवित्र हो गया था, जैसे श्रुति के अर्थ का स्मृति अनुसरण करती है ठीक वैसे ही सुदक्षिणा भी अनुसरण करती थी। [श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्]। प्रस्तुत आलेख्य में

नन्दिनी की रक्षा करता हुआ राजा दिलीप आगे चल रहा है और सुदक्षिणा नन्दिनी के पीछे जा रही है।

18. रुक्मिणी

एक बार श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामाने नारदजी से प्रार्थना की कि क्या ऐसा भी कोई उपाय है जिससे हर जन्म में मैं श्रीकृष्ण को ही पति के रूप में प्राप्त करूँ। नारद जी ने कहा "हाँ, उपाय अवश्य एक है। तुम श्रीकृष्ण को किसी के हाथ दान में दे दो तो तुम्हारी



रुक्मिणी

मनोकामना पूरी हो जायगी।" यह सुन कर सत्य भामानें आगो का विचार न किया और श्रीकृष्ण को नारदजी के हाथ दान में दे दिया। नारदजी ने श्रीकृष्ण के सिर पर एक गठरी रखी और अपने साथ ले चलने लगे। अब

सत्य भामा अपनी भूल पर पछतानें लगी और श्री कृष्ण को छोड़ जाने की प्रार्थना करने लगी। नारदजी ने कहा कि श्रीकृष्ण की वजन के बराबर कोई वस्तु दे दोगी तो मैं उन को छोड़ने के लिए तैयार हूँ। सत्य भामा ने मान लिया था। उसने तराजू के एक पलड़े पर श्री कृष्ण को बैठाया और दूसरे पर अपने सारे आभूषण रखे। श्रीकृष्ण का पलड़ा नीचे ही रह गया। रुक्मिणी को छोड़ कर बाकी सभी पत्नियां वहाँ आ पहुँचीं और हाथ मलने लगीं। सब रुक्मिणी से जाकर अपना संकट बताने लगीं तो रुक्मिणी वहाँ आयी। उसने तराजू के पलड़े पर से सारे आभरण निकाल दिये। उसपर केवल एक तुलसी दल रख दिया। बस, श्रीकृष्ण का पलड़ा ऊपर हो चला।

एक बार श्रीकृष्ण जी रुक्मिणी से दिल्लगी के तौर पर कहने लगे "तुमने बाकी राजाओं को छोड़ कर मुझे पति के रूप में वर लिया था। वे राजा लोग तुम्हारे प्रेम की भीख पाने के लिए तरसते रह गये और मैं तो उन से डर कर एक टापू में [द्वारका] छिपा रहता था। अब भी तुम चाहो तो किसी के पास जा सकती हो।" बस इतना सुनना था कि रुक्मिणी मूर्छित हो कर गिर पड़ीं। रुक्मिणी के दिल में यह डर हो गया था कि शायद श्रीकृष्ण मुझे छोड कहीं चले न जायँ। श्रीकृष्ण ने उसे उठा लिया और गले से लगा लिया था। उन्होंने सांत्वना

दी कि यह परिहास की बात थी और तुम्हारी सच्ची भक्ति मुझे खूब मालूम है। श्रीकृष्णतुलाभार का प्रसंग ही प्रस्तुत शिलालेख्य में दर्शाया गया है।

19. आर्याम्बाल

[श्रीशंकर मठ की डयोढी के ऊपर]

आर्याम्बाल श्री आदिशंकराचार्यजी की माता थीं। श्रीशिवगुरुजी की पत्नी थीं। दोनों कई साल तक निःसन्तान रहे। वृषाचलक्षेत्र में जाकर वहाँ के शिवजी की आराधना करते थे। एक दिन दोनों के स्वप्न में शिवजी



शिवगुरजी—आर्याम्बाल

प्रगट हुए। उन्होंने पूछा "दीर्घायु तथा दुर्गुणवाले कई पुत्र चाहिए अथवा अल्पायु और समझदार एक बेटा चाहिए।" उन दोनों ने समझदार और सद्गुणवाले एक

पुत्र की कामना बतायी थी। शिवजीनें भी मान लिया था। तदनुसार उन दम्पतियों के बेटे के रूप में स्वयं भगवान् शिवजी ने ही अवतार लिया था और शंकर के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रस्तुत आलेख्य में पति-पत्नी दोनों वृषाचल के भगवान् की प्रार्थना करते हुए दिखाये गये हैं।

20. कनकधारा

[श्री शंकर-मण्डप की ड्योढी के ऊपर]

उपनयन संस्कार के बाद श्री आदिशंकरजी जब सात साल के थे, ब्रह्मचर्य के क्रमानुसार भिक्षाटन करने लगे थे। एक दिन किसी ब्राह्मण के घर पहुँचकर नियमानुसार 'भवति, भिक्षां देहि' की आवाज़ दी थी। उस घर के ब्राह्मण उञ्छवृत्ति के लिए बाहर गये हुए थे। उञ्छवृत्ति के द्वारा जो मिलता, उसी को पका कर उस घर वालों का निर्वाह होना था। उस समय ब्रह्मचारी आचार्य जी को भिक्षा के रूप में देने के लिए उस घर में अन्न कुछ भी न था। ब्राह्मण की पत्नी अत्यन्त दुखी हुई। उसने ब्रह्माचारीजी को देने योग्य वस्तु की घर भर में तलाश की थी। उस दिन द्वादशी होने के कारण पारणार्थ रखे हुए आँवले, जो कुछ कुछ सड़ भी गये थे, उसकी दृष्टि में पड़े। बस, ब्राह्मणी ने वही आंवला लाकर भिक्षा पात्र में डाला था। अन्न के अभाव के

कारण, जो वह दे न सकी थी, उस ब्राह्मणी के मन में ग्लानि भीं उत्पन्न हो रही थी। बालक आचार्यजी सब



कनकधारा

कुछ ताड़ गये और उस घर की दयनीय हालत पर तरस खा कर वहाँ अनुग्रह करने की स्तुति और प्रार्थना लक्ष्मीजी से तत्क्षण की थी। उनकी वह स्तुति "कनकधारा स्तोत्र" के नाम से प्रसिद्ध है। बस, उसी क्षण उस घर में सोने के आँवलों की वर्षा-सी हो गयी थी। प्रस्तुत आलेख्य में आचार्य जी का भिक्षा मांगना, ब्राह्मणी का आँवला भिक्षा के रूप में देना, ऊपर से गजलक्ष्मी जो की कनकधारा की वर्षा करना ये सब प्रदर्शित किये गये हैं।

21. सरसवाणी

[श्री सरस्वती मण्डप की डचोढी की बायीं ओर]

भाष्यों की रचना करने के बाद श्री आदि-शंकराचार्यजी प्रयाग पहुँचे थे । वहीं पूर्व मीमांसा शास्त्र के धुरन्धर विद्वान नामी कुमारिल भट्ट जी निवास करते थे । आचार्य जी का इरादा उन से मिलनें और शास्त्रार्थ करने का था । परन्तु उस समय श्री कुमारिल भट्ट जी तुषाग्नि में अपने शरीर का होम कर रहे थे । बात यह हुई कि श्रीकुमारिल

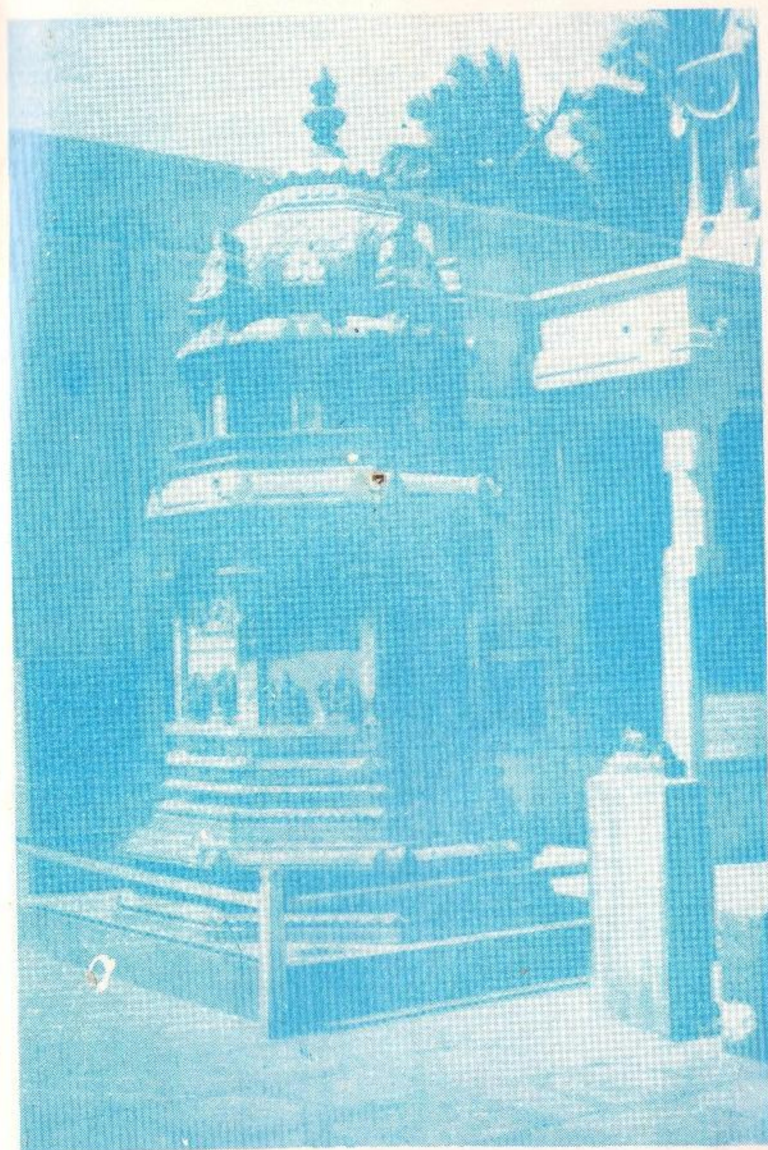


सरसवाणी का माध्यस्थ्य

भट्टजी बौद्ध ग्रंथों का कूलङ्कष ज्ञान प्राप्त करने के विचार से स्वयं बौद्ध धर्म का ग्रहण किया और बौद्ध भिक्षुओं से उस धर्म का सारा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था । इसके बाद उन्हों ने बौद्ध धर्म के तत्वों का खरा

खरा खण्डन भी कर डाला । यह एक प्रकार से गुरु-द्रोह हो गया था । अतः उसके प्रायश्चित्त के रूप में भूसी की आग में अपने को भस्म करने लगे । ऐसे अवसर पर हीं आचार्य जी वहाँ पहुँचे थे । अपना विचार भट्टजी से बतलाया तथा उनके शरीर को पूर्ववत् स्वस्थ कर देनें का भी वचन दिया तो उन्होंने न माना । भट्टजी ने कहा "माहिष्मती के नगर में मेरे शिष्य मण्डनमिश्रजी निवास करते हैं । आप वहाँ जावें और उनसे शास्त्रार्थ करें ।" उनकी बात मान कर आचार्य जी माहिष्मती नगर जा पहुँचे । श्रीमण्डनमिश्रजी से शास्त्रार्थ करनें भी लगे थे । इस शास्त्रार्थ की मध्यस्थता करने का भार मिश्रजी की धर्मपत्नी सरसवाणी जी को सौंपा गया था जो श्री सरस्वती जी का अवतार मानी जाती है । श्री सरसवाणी ने फूलों के दो हार दोनों के हाथ दे दिये और कहा कि जिनका हार कुम्हला जाय उनकी हार मानी जाय । दोनों यह शर्त मान कर शास्त्रार्थ करने लगे । अन्तमें श्री मण्डनमिश्रजी हार गये । प्रस्तुत शिलालेख्य में यही घटना चित्रित की गयी है ।

षोडश गणपति आलयम्



षोडश सुब्रह्मण्य स्वामि आलयम्

